***** भय अश्वय *****

पितृ-कश्य रवि अर्जुनितकर
विशेषवाद - रण विचारकाव्यकार

विशेषवाद ने उत्तम, मध्यम और अवर इन काव्यतंत्रों की \( \text{चार्चा} \) नहीं है। विशेषवाद की चार्चा अवस्था की। वे उसके उपरेश गुणों के विशेषकार रहे हैं। उन्होंने कविताकाव्याभरण को लिखा लिखे सुशील कुमार देव ने घर्षण के विद्यमानश्रुत्ति ठ न की भौति चिन्तकाव्य कहा है। इसमें प्रतिपण व्यक्तवाद गतियों का ग्रंथ प्रायः घर्षण के ग्रंथ के अनुसार है।

ग्रंथ महत्वमें व्यक्तवाद ग्रंथ 'गिनान जा चुके है।

विशेषवाद ने कुछ तंत्रों में घटाव ही की है। उदाहरण अपने दिन है। यहाँ घर्षण से उनके मतमेद के साथ तथ्यक्रम, प दृष्टि तथा कालासर, गोमृती, और सर्वत्र सदाभाषण विवेचन प्रस्थापित किया जायगा। इस से हमने और पदों को अभिप्रयोग में गुणित करने में विशेषवाद की क्षमता का विद्यमान होगा।

विशेषवाद और घर्षण -

घर्षण ने केवल विद्यमानत्त्वक इमान है जबकि विशेषवाद विद्यमानत्त्वक को भी मानने के पथ में है। इन्हें विद्यमानत्त्वक में अन्तर्भूत मानने पर विद्यमानत्त्वक, व्यक्त, समस्त और विद्यमानत्त्वक का भी अन्तर्भूत होने लगेगा। विद्यमानत्त्वक की भौति विद्यमानत्त्वक में भी विभिन्न है।

प्राचीनतत्त्वकार के न्यायसम्पन्न दृष्टव्यापारी। नव विद्यमानत्त्वकयोगकारी समावेश होते वार्ता। विद्यमानत्त्वक व्यक्त प्रति समस्त विद्यमानत्त्वक होधयोग का विशेषार्थ "

गतार्धप्रसंगतु। विचित्रतिरजज्ञै। च साम्यत्।

विषमसत्त्वस्य मे दो बार समस्त से और एक बार व्यस्त से उतर निकलता है। यदि यही व्यस्त भी दो बार उतरवाना हो तो वह विषमसत्त्वविव्यस्त भी हैं अस्तकता है।

वही चारी। शस्मास्सन्य व्यस्त्न श्वुरु सुकुदु तरम।

तदूःस्य समस्त्वस्य। स्वव्यस्तवर्त्तम परोभिवधा। कविन्द्रकृकणिक्षमरण पृ० ५८।

द्विसदसत्त्वस्य का उदाहरण -

कोड़ूक्नरुत्रो युनी वथुविव्यस्तः पृत्तम।

प्रश्नवृत्रो ग्ये हे वा चारी। सहदृशोधितम।

इन प्रश्नों का उत्तर है - मधुरजनभवनयो। इसके दो समस्त पद्धतियाँ हैं। और एक व्यस्त पद्धति भी है।

इसीलिए विषयादित्वादित्वादित्वादित्वादित्वादि तत्तव है। इसका नाम विषमसत्त्वविव्यस्त को अलग भेद माना है। इसका लक्षण अयो दिया गया है। उसी का उदाहरण यह है -

न्युद्यो मुनि रघुसूता कोडूकृक्ष्या वा कोडूक्षी।

करंग्मरूगनारुर्त्र: कोडूक्षी कुन्दरी शरदू। कविन्द्रकृकणिक्षमरण पृ० ५९।

इन प्रश्नों का उत्तर है - सुतरामानिन्दतार।

1- कविन्द्रकृकणिक्षमरण पृ० ५८। कविवस्त्रादित्वादित्वादित्वादित्वादित्वादित्वादि।

2- मधुरसत्त्वस्य रजनी। रमणीय:। मधुरो रसिकोभ्यासाती जनोऽवनि। मनोऽवनि। स्वभावादित्वादि। मधवनस्कृतिं सर्वविव्यस्तः। कर्माधर्मादित्वादित्वादित्वादित्वादित्वादित्वादि। इत्यादि। मनोऽवनि। कालभास्मादित्वादि। मधुरसत्त्वस्य रजनी। रमणीय:। मनोऽवनि। स्वभावादित्वादित्वादित्वादित्वादित्वादि। कर्माधर्मादित्वादित्वादित्वादित्वादित्वादि।

कविन्द्रकृकणिक्षमरण पृ० ५८।
इसमें दो समस्तवच्छेद और दो व्यक्तवच्छेद है -

(1) उसने परम्परा कैलिता सुनो जलिते रामानुज स्मार्नोहरस्तारो
व्यक्तवच्छेद । यह उत्तरूणि भवित । सुनेन रामण अानन्दिता राजगानी-
बदले तथापि आरा देवध व्यष्टाधुरी कैलिता भवित ।

(2) सुतरामप्रभावीनी भाननुजुक्ता वा तारा अक्षकनीनिका वश्यातुदशी
युविलम्बभवित । सुनन्दी सुखेन तरीतु शक्ता भवित शरच्च मा तक्की-
स्त्रया शान्तिन्य उत्तराशिला स्तारा नक्सरणि यत्र तारुमुखित ।

इस प्रकार विद्यित पदवच्छेद के कारण यह एक अलग
भेद है ।

परीक्षण के अनुसार प्रस्तोलर के भाषावेद से चित्र
और सूचना - दो भिन्न-भिन्न भेद है । संस्कृत-भूपक्षाय भाषाओं का
मिश्रण चित्र है और एक मापा में निष्ण प्रस्त सूचित है । तालय
यह है कि चित्र में दो भाषाओं से किरु गर प्रस्तो के उत्तर भाषालेख से
दिशा जाते है । जबकि सूचना में रक्षामथा से ही प्रस्त है और उसमे भेद उत्तर ।
यह मत विशेषत्त को मात्र नहीं है । उनकी वृद्धि में प्रस्त और उत्तर के
भाषावेद से अर्थप्रद चित्र कहा जाता है । यदि प्रस्त और उत्तर की एक
भाषा से ही भिन्न-भिन्न अर्थ बृहत्त हैं तो इससे चित्र के विस्तर सूचित
भाषाका दूसरा भेद नहीं बन सकता । प्रस्तोलर की भाषागत रक्ता
में अर्थप्रद विभाजन नहीं है ।

भाषावेदार्थमें चित्रमिश्रित्तायते
तद्भस्त वाच्यामें यंस न युक्ता विभाजक ॥

1- कवीन्द्रकृष्णभारण टीका पृ । 0 59 काल्याणका 8
2- भाषावेदार्थमें यंस न युक्ता संस्कृतम्मितार्थम ॥
संस्कृतमें विविधहृदय लेकाल्यान ॥
विद्यवृक्षमध्य्र 3/49 तामूर संक्षरण
इस श्लोक की टैगा भी अवलोकनीय है।

नन्देकरामेश्वरम् भाषायो पदकृतेनायार्थ्यत्र प्रतीताश्व चित्रस्वाकारो।
विद्मृदधानन्दो दृष्ट इत्यत्व आङ्गजेयही रेवता। भाषायोधिनयो योजयेभवः स
तु चित्रविस्मेदपदको न भरवित। पूर्ववत् खेड़नाथ चित्र रसान्नसंबन्धयते।
विध्मृदधांकेष्वति तर विलयप्रसादविध्यः।

एक भाषा में अर्थमेव की भिन्नता तो सभी ज्ञातियों द्वारा समान है। अतः इस ज्ञापार पर संस्कृत नाम का एक भिन्न भेद सिद्ध नहीं होता।

विद्मृदधानमेव में चित्र के उद्वर्तन संस्कृत आदि 6 भाषायो
में है। विशेषत: ने संस्कृत और प्रभाकर के केवल वेदान्त उद्वर्तन दिशा
में है। उनकी दृष्टि में सभी ज्ञातिज्ञों का आकलन संभव नहीं है।
जो यहाँ वर्णित है उनसे और अधिक भी उभयन्त्री है।

कविताय ज्ञातियों के लक्षण धर्मदास के विर स्वस्ती से भिन्न है।

जैसे प्रधेलिकाः मे स्थित के रहने पर भेद विशेष का अभिव्यक्त नहीं
रहता। अर्थिनिश्चयता में आदि होती है और शब्दकिर्तिता में शाय्यो।

ये भेद दोनों में समान है। धर्मदास मे स्थित का उल्लेख प्रधेलिकाः मे

नहीं किया है। गृह के केवल भेद मिनार है। जबकि विशेषत: ने

गृह का स्वस्ती देकर उन्हें उद्वर्तन भी किया है। गृह में विशेषत अर्थी

1- कविन्द्रकर्णभाषण पृ 94 कविमाता 6
2- स्थित सति विशेष्याय अभिभाव भ्रेतिकाः।

अर्थ तिलकः भव्यावर्त शब्द साहित्य कदन्ते।। कविन्द्रकर्ण पृ 95
3- व्यक्तिवृत्तादेशी वससार्थ्य गणनातुः।

येत्र वाग्यात्तराच्छिन्यात्तुः कथेतुः सा प्रधेलिकाः।

विद्मृदधानमेव 4/1। लाहौर संकरण

4- अजयमार्गे गृहकम्ब वही 4/9, लाहौर संकरण।
की प्रतीति स्फाक नहीं हो पाती -

तदुपूर्यं यत्र नामाति सहस्यौं विशेषति।

यदृष्टि कवीन्द्रकर्णीमरण का विशेषण क्रम धर्मदास के विद्यमुखमंडल के अनुसार है तथापि इसमें कुछ नये भेद भी मान्य दुरुष है जो धर्मदास के ग्रन्थ में नहीं मिलते । विशेषवर विदः समस्ताविद्यत्त

विशेषकर की देन है । धर्मदास संयमत सुशुष्क नामक भेद विशेषकर को अभिमत नहीं है । जहाँतहाँ जातियों के लक्षणों में भी अन्तर है ।

फिस जाति का लक्षण धर्मदास ने नहीं दिया या दूसरी

जातियों के साथ संकेत में दिया उसे विशेषकर ने अलग से लिखा है। जैसे धर्मदास के नागायण का लक्षण सक्षमत है - प्राणयमाधारण श्राक (विद्यमुखमंडल पृ 0 85) किन्तु विशेषवर्तक नागायण के लक्षण में अधिक

बात है।

अनुरोधितोसमाप्तों मिलकरतीहैंगहरे ।

क्राहते मध्यमावृत नागायणोऽयुक्ताते। कवीन्द्रकर्णीमरण पृ 0 94

फिस जाति के स्वरूप का धर्मदास ने दो पद्मास्च दिया है

उसके भाव की विशेषकर ने नक ही पद्म में लापत कर दिया है। उदाहरण

सबेही नवाही है। निम्ने आचारण शास्त्र और पुराणो कर बातें रहनहट

कर आई है। नवधार्मिती और नया के पदाधिकों की शक्ति भी पाई जाती है।

1- कवीन्द्रकर्णीमरण पृ 0 97 काह्यमाला 8

2- धर्मदास के व्यस्तसमात और विद्यमुखमंडल के लक्षण अलग-अलग है

और प्रक्षेपिता - स्वरूप दो पद्मास्च है। (विद्यमुखमंडल पृ 0 12,13

और 104)। किन्तु विशेषकर ने व्यस्तसमात और विद्यमुखमंडल

और प्रक्षेपिता को रक्ष ही पद्म में लिखा है। - कवीन्द्रकर्णीमरण पृ 0 56

और 95
कार्यप्रव्रत्य -

पद्मावत, गोमुक्षिका और सत्कोंमल आदि बन्धु को अपनी प्राचीन परमर्श है। ददी और सद्र के बाद भंडारीविन्यास-लोकार के स्थल वे इन्हें शहबानौरयों के अनु तर्क निर्धारित किया है। खुली आदि के संशय में चर्चितविन्यास विचारों का अर्थ है। विद्वान ने व्य-स्ताद जातियों का साध हन बन्धु का निर्धारण किया है जो भिड़ों में गुफ्तित होते हैं। कार्यप्रवत्य को तीजिर -

चक्रवर्ती में उल्लम्बक के प्रथम और विवेकी पद्म से चार मुकुन्दी तथा तृतीय और चतुर्थ दाह से चक्र के मेलाकार (नेम) को दक्षिण क्रम से वनाव जाता है।

कूल पद्मों में प्रसन -

पीत्रीमा चक्र की विविधतुष्णे तोकस्य केभु सूड़ा -
किसुरुवर्षुणा खललमनि तलकस्याहुस्य केभु ।
पुण्य चालुवय किसुत्रभयनि कोटुवार्षिकलम्
किस्य वाल प्रतिक्रम व श्रुण्य सिंहः कमालम्यते ॥
किसुरु रुम्य सुरुक्तुवर्षीकक्ष कुञ्ज्रमेवेकति का
कुस्तुरुखलकोरुदुहुरु फूण्यते प्राणयं दर्श कर्ते वच्छुः ॥
कीठी जनाशोभी संगमिते कक्षे विधातुः नमः
कीठकुरुक्क्षारते वदु गुणेन्द्रिय लघेतीयुः ॥

1. विविधश्रव्य विचारतुरार्न्तर्विनारूपकालयः ॥
2. आर्न्तर्विन्यामलातोरपथेपक्षायः ॥

कक्षाध्यक्ष श्रावण पृ ४० ६३ कक्षमाला ५
कक्षाध्यक्ष श्रावण पृ ४० ६३ कक्षमाला ५
इसका उत्तर निम्न लिखित में है -

धुधारस्रू मार्गुषअ मुनोमाल भार्वामश।
सत्त्वोपीणिरिहायः भ्राम्या भास्ति नवम्।। कविक्रमणिपरम पूर ८४ ॥

इस उत्तर पद्धत के पद मैं इस प्रकार होगा -

मु, धा, राम, मापु, यम, सुमा, नी, भासु, मा, अर, वर्मू, स्त, नत्री, राशित, धार्मू, भ्राम्य, अमा, सते नवम्।

नामकरण के तत्त्व के अनुसार सुधारस्रू आदि उत्तर पद्धत के अभारों की चित्र में देखिये।

धुधारस्रू आदि उत्तर पद्धत में नामकरण का वर्णन है। भ्राम्य का मार्गुष सुधा धारा में भार्वात है और पूर्णों को आमा में मार्गव शीघ्रत है। सत्त्वोपीणिरिहायः पर्वत कर है इस प्रकार उसका नवम मार्गुष स्थलक्षय है। प्रसन पद्धत में लिखे गये प्रश्नों में से यह अन्तिम प्रसन का उत्तर है।

उत्तर पद्धत के पद्धत से धार्माध्यक्ष आदि प्रसन पद्धत के उत्तर क्रमांक याँ निकल जाते है।
मातुवाचक सू का सम्बोधन सु है। धेरू और घा दोनों
भा धातु है। प्रथ्य (राकु) में समी की सृहा है। मासुँ =कितना
को खा नहीं होना चाहिए। यथा वत्व शब्द परक है लिखे से तत्त्व की
आकृति है। सुगन्ध का सम्बोधन सुम है। नौ निष्पाधिक है। सूर्यमैदन
प्रभावण (मासु) है। पार्श्वन सुत्र 6/4/74 से मा के साथ
अदृ और आदि का निष्पाधि है। मासुँ को अदृ होता है। सिद्ध दन (दच)
का अद्रय लेता है। सूक्ष्म करना चाहिए। दिन्दुद गत्तिक (नागी)
होता है। कुञ्जर (राक्षसता) में अक्रोण ता रहती है। अल सोडारा
अधिक (हार्दिक) होता है। ब्रय को वपृ बाहती है। बर्ण की राति
नखर कीन होती है। समन के लिए कूरतत अनमन अर्था रक्षात है।

प्रद्युक्तन मे प्रदू मे अधि पतली मे दो दो र् वर्ण प्रत्येक
मे रखे जाते है। बीच के वर्ण से प्रत्येक का उत्तर वाक्य जनाता है-

प्रत्येक वर्णवर्ग घोटालादि भवेशद्भुम ।।
प्रत्येकातरचार्य मध्यमोदितकार्कावर्षम् ॥

1- कवितार्किकमिरण पू 0 84 कव्यमाला 8
निन्न उदाहरण पद्यो में प्रश्नो का उलेख हुआ है -
का आविष्कारेंत दैवत्व का प्रत्येक बदन्येंनिता ,
कीत्वा जन उल्लम भवित का कौशलुक्ती सूर्यमा ।
स्याक्रिम्भिजननी वरायणगर्गी कीर्तनु गिरी चतुर्ती ,
तीरु तावुपारावलिवथे प्रभुर्वक्ष कोवुसी ||

हैसे कौशिकानुप्रकट शुचिनिर्मूल्यं कर्मं के मुनिनं,
युग्मिन्य सुकृत्ते नर चारोत के करीं विदुः कोवुसी ।
गायरारी पितारी कमस्तिवते किसे सेवति?मनु ।
का योगेन्द्रणे चालिः छात्र जनके विद्वां गुरुमये कथमये ॥

उक्त प्रश्नो के उल्ला निन्न उल्ला पद्य में अवलोकनीय है -

सुभा गुरुणं सुलमपु सुवेः

सुभीते सुभी सुभी सुभी सुभी \।
कविन्द्रकरणरामण पूर्व ||

पद्याङ्क न के लक्षण के अनुसार उक्त उल्ला पद्य को विचार वै देखिये |

- उल्ला पद्य का अध्ययन इस प्रकार है - हारे ने गोविंद की रक्षा की सुरभि । सुरभि =

dेवों के हृदय में देवों का भ्राम है । दाता के मिलने पर आयुंगुरु (आदृय) हो जाते है । उल्ला जन सुदर धन वाले होते है । सुलमपु = आभार में सुरभि

tपत्ता है । जननी पुत्र का प्रलंबन करने वाली होनी वाली। सुवेः = खिचकाल में

सुवेस (स्तंक) है । समुद्र के द्राक्षों तरीके में धोपने वाला अधिक समुद्र अवाक 

सुप्रहित = हस की गायक राम है । सु, वि, नि, और दुरु इन उपसर्गों के

रहते सुनिके सम्बन्ध रस स्वर्य धातु के स की भ होता है । सुखें = पुष्प के

मानव की सुख मिलता है । सुधु = गायकार के भिन्न का नाम सुधु है । विद्रो ही

की आग्रह नामक विशेष राम के उद्देश्य है । सुलभ =

सुभा नाम की योगिनी जनक में प्रविष्ट हुई । गुरु से विद्वांग सुभा है ॥
उत्तर के सान्येश्वरन मान अकार काल्यण वन्ध मे काल्यण के आकारस्म से तीन कोणें मे रखे जाते हैं -

त्रिवृत्त वन्ध पार्श्वाक्षरपुर्ण विशाल जति काल्यणम्।
कवीत्रकरणाधरण पूर 85-86 काल्यान्त्दता अष्टेषुगुष्ठ
काल्यणकर्मे उत्तर प्रशन निमा पद्म मे अवलोकनाय है -
तकेलु व्यवहाराय किमु कुत् कालु वीजेय मोमिसको।
तल्द्वाकर्णायाय काल्यण पन्तायलोक्कोड़ा।
केदारः पुङ्गोलालोकांसेनायकु त्र व्यवहारवेत,
किम जनयो वद यो युद्धिःनरसे विविधिः विशेषो महानु।
कवीत्र करणाधरण पूर 85-86 काल्यान्त
इस प्रशने के उत्तर संक्षेप मे इस प्रकार होगे -
समवाय: समयकृत: समयाहित:।

काल्यण (काल्यण) का चित्र इस प्रकार बनेगा -

- समवायतः का अर्थ यह है कि मोमिसको के साथ तक वितर्क करके नैयायिको
  ने समवाय पदार्थ की प्रतिष्ठा की। समयवृत्त: का भाव यह है कि सैन्य मे
  सुख और दुःख जीवि का विविध समयवृत्त है जर्मचू समय के अनुसार है।
  समयाहितः का तास्य यह है कि अमत पुरुष के नीतिस्त अपने समूप लाते
  है। दूसरा अर्थ यह है कि मय नामक दानव से युद्धिर जैतत है।
गौड़ी में सम और विभिन्न वर्ण मिलका उपर और नीचे लिखे जाते हैं -

मिलका मिलका गौड़ी विभिन्न वर्णोऽनायक। कविन्द्र करणामयम पृ085

गौड़ी में इस प्रकार प्रश्न है -

अन्तःय सरत : कुते जगदिष्ठ कीहुक सता कीहुक
भार्य मौननमहुक प्रभुतम का कि निघालेक्षणा।
सुसुधिक के गुड़स्थ चा जनकता के युज्मदसम्पर्के।
वर्गीयकारलो भविनि वद के वर्णाः परे पृथिबः।

धीरेिन्द्र सरत दानवगुणे: कीहुक दिवे के यथा,
विद्यःतात्तकालः के भविनि वा के वर्गीयवर्गकेमुः।
काेल दुःसिद्धित जय के दहरय कृती कधे भुजुतामुः।
चन्द्रोधीमान दृष्टे कुर्मी सुभ्रि विमुहता च किमुः।

उक्त प्रश्नोऽ के उत्तर निम्न पद्योऽ में दिया गया है -

माृत तराजुता समकमीषांत सीरिमे।
अष्टमार्गारणीतारथ प्रगमोमाय सौऽमे। कविन्द्रकरणामयम पृ0 85

इस चित्र में बीच के आधार पद्य में प के पूर्वीक और उल्लासी दोनों का
साध देते है।

प्रश्नोऽ के उत्तर क्रमाः इस प्रकार है - माृति = अन्तःय म के बाव
आरम्भ होते है। येंृ = सारा जगत गमनसील है। पराह्नात = साधु दुसरी को
पहला करे, मौनी जालाप होता है। गौड़ी पात के पास जाती है।
प्रथमा सक ज्ञान सुकी संबुंधितता है । र (ैंक) और भर (कृत) गुड़ के जनक है । पन्नवा अरु ७१/३। से युक्त अनुसार पर रहते हैं। दर्शि को अतु होता है । कांदे वर्गी से परे पंचम अर यम आता है । मे रंग का पुत्र हुँ - यह कह कर इन्द्र ने अपना श्रद्धा प्रस्तुत किया । श्रेम स्वकर और रकार के बीच अर के सार चनता है । चन्द्रहीन तिथि अंधा है ।

ई का सप्तमंडिक यामू है । वसुदेव और अनुन राजाओं के नामक है ।

ल लपुष्यम और म आनिगुहू है ।

इस श्लोक में विरहनी की उक्ति भी है - वसन्त में मदव ली कोष्ठी के अलावा से आम के पेड़ मनोहर लगते हैं । कामसंपत्ता नाथिका ताप , न्याय श्रम और स्वेद को प्रहस्त हो रही है ।

सर्पोषण में सक, दो या अनेक सर्पिलगत वर्णों के व्याकरण अनुलोप- बिलोम पाठ से उलट प्रकट होता है ।

**रक्षेन व्यावस्था वा सर्वेष समतिलोक्ते।**

यजोनिताराम दुष्कर भ्रमण्य विद्विन्य सर्पोषणमु । कशीनिर्धारणपुष्करण पृ ८६

नाम पद्धति में बहुत से प्रश्न है 'कृष्ण' पदात्म स्वरूप और व्यज्ञानों के अनुतम-विलोम पाठ से सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं- क शत: काश्यकृष्ण कृष्ण जगदनुगार्त क शतायत्तामुह न क स्वाधेर्षक्स लोपः प्रकृतिसंक्षेपः कुछ क प्रवृत्तः श्वातः।

को श्रवा वग्न भिभुम्भर विहिष्ठोण किदर्सोर च गायणपायशु ।

कृ स्वाच्छन्दः खंगात प्रसववम धुप कस्य कोरख्योगीधी, कस्यानुपुत्स कल्यः प्रभवति क शतः कस्य शवदार्पणः ।

वद्विनस्य कस्य प्रेम कस्य भक्ति कस्य ज्ञान विद्वेष्ठतिभी ।

को वद्विषध्वम बमृ विद्वानमूलहितः पुष्करीयो सरिका । कली-२०७५,१०,०६२\(\) २०४० ८६.

<table>
<thead>
<tr>
<th>का</th>
<th>ने</th>
<th>ती</th>
<th>मे</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>तै</td>
<td>का</td>
<td>ने</td>
<td>सा</td>
</tr>
</tbody>
</table>
कवीरिपठ में इन प्रश्नों के उत्तर त्रयों होता है -
कद्दू करीमीत काव्य। या जयपति विष्णु में जगदु अनुसूचय है। रो पादु
तर्कतांक है। रो रि 8/3/14 से रेप का लेख होता है। रेपे प्रतिकृति
5/3/96 से प्रतिकृति अर्थ में में क प्रत्यय होता है। प्रान्त सूच्र 6/2/104
से अग्र परे रहते तू को कादेशा होता है। वि का रथोपण के है।
कौं से कृष्ण दौरो परसर शं क है। उद्दित पादु सैयड़ और यह
का लेख डोकर रोहत। 7/4/27 से रेप्रत्यय दुआ लभ तरीकूलित बना।
अदाति में शर्क का लेख होता है। फा और इ पादु गदयाल है। कविकाल में
लघ शब्द आता है। काम के पुष्पाय बाधा है। सूच्र 7/4/32 से वाई के
योग में आ को इ होता है। सूच्र 1/2/4। से रक्षात्र प्रत्यय की
अग्र रंगा और सूच्र 6/1/67 से लेख । रोहत: 7/4/27 से शकार
को री होता है। र अदगातु निम्न को लो री है। क्य और अवे रथोपण
है। शल और अव प्रत्याहार से शं और इ भिलकर री वना। उ को वम
होता है। जलायमेद से अव अव देशार है। किन्तु अनुपश्त
विशा रूक है। कव्योरी रूक पुष्पनीया नदीहै।

इन के बन्यो में प्रश्नों के उत्तरपद्धृत विशिष्ट हुए है।
जब के प्रश्न जावायर और कव्यों के बन्यो में केवल वर्णालक पद्धृत है।
इन विश्वास्नो में हिषिलत के तारा रचनामियक है। पदी और वास्ने के
रूपक पयो और विषय पित देखते ही बनते है। शब्दों की तोड़-तआर
में पद अपनी स्थानाधिकता से ढाण़ दें बढ़े है। शिष्ट कप्पर नें अर्थ को
खोट कर वैठाने से एकोपमा का होना नैसर्गिक है। इस कारण यह
रचना पहले गोरख यम्या जन पहती है, पर गहराई पर जाने पर पदों
में शब्दों की जम्ब परग होता कर देती है। इसते कवि के वैदुय और
कविक कह कोट्या अवगत होता है। पदों और शब्दों को अमीट क्रय
से भौतियो में कांव समर्थ है। प्रत्यक्ष बन्य को वृद्धि में रख कर लिधि
विशेष में लिखे गर वर्णों के पाठ को पुनर्लिख अवगत हुई है।
गृहुत्रिका और सर्वतोभाषा की आवाज़ ने दुःकर कहा है। विशेषज्ञ की तलाश ने ने इसके दुःख बन उठाता। एक ही पद में अनूठे माह कश्यप के व्युक्ति के आमाद पर भरे हैं। ये व्यस्तांद जाति का समूह के मनो-विनोद की पुलिलोग़ीया है। विशेषज्ञ ने अपनी कृति को चौंचाता का फल कहा है।

तद्भि परिप्लवतात्या परिप्लुस्तनेवेदनेति। कविनिर्देशनम पूर्ण 52। सहुदयगणिन्यो में मनोविनोदो के लिए पत्रोलो का उपयोग प्रसीन काल ते ही चला आ रहा है। इस दिशा में वर्णदास के वाद स्तंभ मन्त्र को लिखने का प्रयोग विशेषज्ञ की बहुमुखी प्रतिभा को मिला। उन्होंने इस मन्त्र की दीक्षा को भाले ही स्वयं लिखा है। इस दृष्टि से विशेषज्ञ का स्थान वर्णदास की अपेक्षा अधिक गोरवपूर्ण माना जा सकता है। व्यस्तांद जाति के साथ विविध बन्धों की व्यक्ति परमार्थ का आगे भढ़ने से व्रजलाहर ने अर्लकारशास्त्र की ब्रीहुस्त्र की है। इस के लिए अर्लकार शास्त्र विशेषज्ञ का भीषण रहेगा।

1- वर्णनामे कश्मी विद्याकुत्तरं कविः।
गृहुत्रिकेदित तदाद्विद्विद नतिद्विद विदुः। कृत्य शाय मुद्दतारमेवे गृहुत्रिके। माय 1/46, में महत्त्व के बारे में उद्धुत कर। वर्णदास (विद्याकुल मण्डल पृ 76) ने भी गृहुत्रिका और सर्वतोभाषा को दुःकर कहा है।

2- क्रीडाप्रायमिनोको कृत्यतेजन।
प्रवर्तविन्यास से प्रस्तुत अनुपम विदुः। काह्यार्थ 3/97
अर्थातः

विषेषतः ने अर्थातः तारीखों पर अलकारशास्त्र की तौन कृतियाँ की हैं -
अलकारकौशल, अलकारमुक्तकारी और अलकारप्रवर्तक। इनमें अलकारकौशल नवन- नेवायिकाली में लिखी गई एक प्रोइ वृत्त है। इसमें केसरम ममत समय 61। अर्थातःकार का विवेचन भेदों और उदाहरणों के साथ हुआ है। इन अलकारों में उन अनेक अलकारों को भी अत्यावश्यक कहा गया है जिन्हें ममतपरवर्ती अलकारिकाओं ने बदला दिया। विषेषतः ने इस वात को रोक ने का प्रयास किया। विषेषतः कृत अलकारों के तकन अधिकार ममत के तकनों की शास्त्रीय प्राप्ति करते है। पर साधा ही अन्याय ने अलकारों के विवेचन में नवनता ताने का प्रयास भी किया है। सबी तकन नवनाम की शैली में लिखे गए हैं। वहाँ अलकारों का विवेचन मौलिक और गाम्बियाँ है वहाँ व्यावहारिक अध्ययन और स्वतंत्र निर्यातिक शक्ति का पता लगता है। अलकारों के विवेचन के अलकार भाषा है। जैसे अलकार तकन (पद्धति में), बृत्ति में तकनों का साधनकरण, भेद-सूक्ष्म रूपों से अत्यावश्यक और अव्यावहारिक निरस्त्र के साथ तकनों को दोषभूत करना। भेद और उदाहरणों के साथ विवेचन किया गया है। आत्म- स्वयं होने पर विभिन्न शास्त्रीय विवादों का उदाहरण कर उनका समाधान किया गया है। विषेषतः ने भी संगीत-विवेचन को एकत्रित करा कर अलकारों का वेद कार्या है।

शंकरकौशलनदीक: 1 अलकारकौशलनदीक: 1 टाका पूरा 4

यहाँ 61। अर्थातःकारों में से कोतम प्रमुख अलकारों का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है -

उपाया -

विषेषतः ने उपाया में अत्य अलकारों के भेद-सूक्ष्म रूपों का प्रयोग किया है। उपाया में दो भिन्न पदयों का सादृश्य एक वाक्य में वाचव होता है।

तत्कालिनवाद भीतरीक भिन्नयोगमा: अलकारकौशल पूरा 4

विषेषतः ने इस उपाया तकन में कोई नया तत्त्व नहीं जोड़ा है। यहाँ स्वयं से उपमयोगमा की व्याख्यात हुई है। उपमयोगमा में दो वाक्य होते है। व्यमयोगमा, सजक, तीनक और तुल्यतितात में सादृश्य व्याख्या है। सादृश्य को वाचव करने से उक्त अलकारों का निरक्षरण हुआ है। अन्याय में सक ही वस्तु उपमय में उपमय होती है भिन्न उपमय में दोनों भिन्न भिन्न होते है अतः भिन्नयों का उल्टेश्वर हुआ है। यहाँ तकन नवनाम की तुल्यत शैली में हुआ है।

यसस्तु स्मरणार्थ गतायम्पुर्ण विस्तारकारिक विष्णु-वद्धारिक मामला मामला प्राप्ति सामान्य कार्यक्षम प्राप्त - संपथा - अलकारकौशल पूरा 4
विशेषज्ञ ने अपने दूसरे अलकारान्य में उपमा लक्षण लिखा है।
उसमें चमकारणक सादृश्य को उपमा कहा गया है।
चमकारणक योजक सादृश्यपूर्वक वाच्यण्डनम्। अलकारप्रतीक पूर्व।
यदि उपमा की सादृश्य को चमकारणक न माना जाय तो 'कुम्भ इव मुखे' में भी उपमा का व्यवहार होते लगेगा। उपमा में सादृश्य चमकारणक होना चाहिए।

विशेषज्ञ ने विद्यानाथ और भोज के उपमालक्षणों पर अर्थविद्युति के अर्थों के उदाहरण दिये हैं। विद्यानाथ का उपमा लक्षण इस प्रकार है।

स्वतं शिशुन्म शिन्नें समेतें व शर्मैत।
सामयक्षेत्र वर्षसिं वध्व वेदेक्षेत्रम्। प्रतिश्रुतिपूर्व वृत्ति नवीन मंशा संस्करण
उपमान को स्वतं शिशु होना चाहिए, कवि कविता या सभाविक
ना हो। इस लेखक को व्याख्या हुई है। उर्द्धका में उपमा कविता मराण होता है। श्रीन्वेने से अन्वय का निराक्ष आया है। अन्वय में उपमा और उपमेय रक्षा होते हैं। शर्मैत से स्त्री का व्याख्या हुई है। कारण यह है कि स्त्री में सामय का आधार शब्द होता है। अर्थ से प्रतीक अलकार का निराक्ष किया गया है। वाच्य से व्याख्या का निराक्ष हुआ। और स्त्री के से उपमेयमा का।

अर्थविद्युति ने इस लक्षण में अर्थक दोष दूर किया है। विशेषज्ञ से

तर्क और प्रमाण से इन दोषों का निराकरण कर विद्यानाथ के उपमा-लक्षण को
उपदेय सिद्ध किया है। अर्थविद्युति और विशेषज्ञ के बीच दांडाय इस प्रकार चला है।

दीक्षित के (विद्यानाथ पूर्व ५०५) ने विद्यानाथ के उर्द्धकोशाभिषेक
को लक्षित कर कहा है कि इन्हु स्वतंसिद्ध है। यदि भूलागत से उसे कवि
कविता माना जाय तो अर्थभावीत्वम्

चन्द्र विद्यानाथ विचार कन्नादालित्वविद्वान।
प्रस्थाविताश्रुत्यतिथिसारभावित्वम्। काव्यादः २३/३१।

में लक्षण घटित नहीं होगा। किन्तु भूलत में भाव हुआ चन्द्र
स्वतं सिद्ध नहीं है किन्तु कवि-कविता हो। और अस्माविज्ञावम् के उल्लिखत हुए
में चन्द्रग्रामविचार के साथ वाणी की उपमा विचारण नहीं है। किन्तु उपमा यहाँ
इस अर्थ में है।
यदा- चन्द्रविशाल विभमदेशाश्चिमत्व तथा तनुभावस्तु वाँचीतं न्यम्णिनानन्तं।

यहाँ असुभावक साधारण धर्म है इसका अर्थ असहायता उपमा न
होना नही है। उमेरवल्ले और उपमान—वाक्य में भिन्न—भिन्न धर्म होने पर विकास—
प्रतिविधि भाव माना जाता है। यहाँ में विभाषण चन्द्रविशाल की उपमा में बदन के साथ
चन्द्रचन्दनादि का विभाषण बीच माना है।

दीक्षित ने (दिविभ ० १० ० ५०) कविकल्पलेखन के उदाहरण
में - उभी यदि व्योमिण पूर्वक प्रवाहितकापुरुषाप्रयोगः प्रतेताम्।
तनेषांमीयत तमलानीमायमुखमुक्तस्तत्तत्त्वां च। माय 3/८ दिविभ ० १० ० ५०
में विद्यानाथ के उपमा स्वरूप को अभ्यास माना है। यहां दीक्षित
प्रमाण नही है किंतु अर्थात में संवेदनशीलताकिर्कत है। दीक्षित के अतिरिक्त रेती
में से यह अभेदस्वतांत्राविश्वास्ता किर्कत या सत्याविश्वास्ता के तीसरे प्रकार में (अस्वास्तार्कस्तन-
प्रतिविद्वेष) अन्तर्भूत हो सकती है। गादा के दो प्रवाहों में व्याख्या का अधि
देने पर भी अभेद से संबंध वस्तु है। यद्यपि रुप ही प्रवाह प्रकार है तथापि रुप
प्रवाह के वाद प्रवाहस्तर के अभ्यास से ही अभेद उपन्यास है।

अनवर्तन या उभी ही स्वरूप का उपमा होता है। उपमा में दोनों
अलग-अलग होता है। दीक्षित ने (छत्र मोर्खा पृष्ट ० ५२) दीक्षित के उपमा
स्वरूप का (भिन्नने के अपार पर) उपायोगिकाम, रामायाण और रामायाण
में अभ्यास माना है। और उस उपमा के निम्न उदाहरण में भी लक्षण को अभ्यास
मानते हैं -

व्यायामस्तान्तरित विश्वास न याचते।
वदना माखोतो न मूर्तिला लो ताहा भव।

यहाँ अनवर्तन नही है किंतु दूसरी स्वरूप वस्तु की निर्देशात
की प्रतीति नही हो रही है। विश्वास की पारंपरित है कि यहाँ उपमा है।
उपमाधेद घटित होती है। वे लाहौल भव में काल-कृत्य देख है। -
रत्नकालीगंगा ज्वलितस्चंद्रमेतकालीनलक्ष्मण। भव।

यदि कालकृत्य ब्रह्मविभाग न माने जाय तो उपमा नही चलेगी।
दूसरी बात बढ़ है कि रुप ही काल में दोनों के साहसिक विचार को मानने पर विभी
साधन दोष हो जाता है। -

स्मार्कातित्व कालित तन्त्रादेश्यकविधां। शिलास्त्रार्थात:। उस० ० ४ ७ ४।
लेख के व्याख्यान के लिए विद्यानाथ ने उपमा तकनी में घर्षण का उल्लेख किया है। इत्यादि दोषित ने लेख में स्वयं घर्षण और शब्दसाधन से उपमा के उदाहरण दिये हैं।

(1) सकलकर्ष पुरुषेतिखाते सृष्टि सुधाशिवमिधम
(2) 'सेन-सेन' यथा प्रद्वलनावचनः प्रतापार्जनो यथा।

विवेक शोभुरहस्यक राजा ज्ञानेदारचनो ॥ रघुवर्धन 4/12

विवेकर ने घर्षण पद के अपरिचय को समझ किया है। घर्षण का अर्थ यह है कि प्रसिद्ध गुण जो किया आदि के साथ में ही उपमा होती हैनिःक अन्यत्र - प्रसिद्धनकोलिकथ्य शब्दसाधन म लग्नचास। अकोटो पृ ० १४।

घर्षण का अर्थ ही गुण शिया क्षम है। उपमा न केवल उपमा नै उपमेय प्रसिद्ध होने चाहिए किन्तु उनका घर्षण भी इसी प्रसिद्ध का होना आवश्यक है। घर्षण का मान लेने पर 'घर्षणकर्ताक' में भी उपमा माननी होगी। सम्मान पद से असम्मान उपमा का व्याख्यान हुआ है। अतः घर्षण शब्दकेर गुणवाण्य को और संकेत करता है। घर्षण पद से उपमा में शब्दसाधन का निषेध है। यह पद लेख की व्याख्या के लिए ही है।

विवेकर ने 'रक्तवास' इस पद के व्याख्या उपमेयोपाय का वारण शिर्दी है। यह विद्यानाथ के उपमा तकनी में स्कवा पद के समान है। अथवादोकित ने ( प्र ० ० ० ६२) विद्यानाथ के स्कवा पद पर भी आवश्यक है। उनका कथन है कि दो वाक्यों में भी उपमा हो सकती है। वे इस उदाहरण को देखते हैं उसे वे परम्परागत करते हैं। इस म तकनी अव्याख्यत है जैसे -

रजोत्सक प्रवर्धनाधुनेकं च दनसनिमेषः।
मुक्षतलिम्बग्यास पुरुषोप्येय मुक्तमू। रघुवर्धन 4/29

किन्तु यहाँ दो वाक्य है और दो उपमाओं में है। इनके घर्षण भी अस्ववास है। इन में विश्व-प्रतिविश्व भाव भी है। अतः यहाँ उपमेयोपाय है। उपमेयोपाय के विवेचन में इसकी वचन की जानकी। वास्तविक पद से व्यवहार को व्याख्यात हुई है। किन्तु दोकित ने ( प्र ० ० ० ६२) ने तवाध्यानोपनाम-न पदमुखबेको न भूगो चर्चण होमे।

इति सिद्धस्तसाधुवाल्षेषानिषेध्येति ॥ काव्यदर्शन 2/36

यह तकनी के अव्यक्त माना है कौनक यहाँ सामय वाच्य नहीं है।
इस मैत्र्य का ख्यान करते हुए विसेस्वर ने शक्ति उपमा को भान्तापदति में अन्तर्भूत माना है - भान्तापदन्तात्यथतत्त्वातन्त्रमात्र व । अको 0 240 ।

यदाँ यह विचारणीय है कि विसेस्वर को भान्तापदन्ति मात्र है या नहीं । उन्होंने यथा भान्तापदन्ति को (अको 0 240) को भिन्न अर्थकार नहीं माना है । भान्तापदति में यह अन्तर्भूत नहीं हो सकता । हिंसी विशेष परीक्षण में हिंसी व्यक्ति की अन्य जान की शक्ति हो तब उस शक्ति को दूर करने के लिए भान्तापदति में भक्ति का वारण निया जाता है । तेस्रे -

भान्तापदन्तित्वथे शक्तियं भक्तिवारणे ।

तार निरूति सोकस्य, ज्ञरम् कि न, सखिः प्यार II कुलक्षणत्व पु 028

न पद्मम वाद्ये कि सय का जर्न नहीं है किन्तु केवल भक्ति का वारण निया गया है । अतः उदाहरण का निम्नत्व नहीं हो रहा है । इसका अन्तर्भूत अपनुति में मी होता है । अपनुति में प्रक्रिया का शक्ति या अर्थमितिविशेष कर तत्काल अपनुति तत्त्वात्यथा सेवण को भक्ति निया गया है । पाय प्रक्रियानिम्नित्व में हिंसा अन्तर्भूत हो सकता है । पद्म प्रक्रिया है उसका निम्नित्व कर उसके स्थान में मुख का वर्ण ही निया गया है ।

दोषधर्म ने (सिय मो पु 0 82) विषयिकमा से अक्षरतिव विशेषाधीनमा -

लघुनामार्गकृतपाठविशेषाधीनितात्यथा.

भान्तापदन्तित्वत्वात् भक्तिरः ।

कालिक्क्याः शक्तितपना (शक्तियामा) और सामयलकृति

उपमा (चन्द्रवृद्धिवृद्धि) में भी सामय व्यवहार है । तव एक में से यहाँ विद्युतात्यथा का ब्रह्मात्य-तत्त्व वािह कर नहीं होता । यदा वेश भी सामय नहीं है क्योंकि ध्वनि और नेत्र वोनों का विम्लतिकत्वनिम्नित्व है । अतः यहाँ अमेर की विकस्ता होने से उपमा अभिरूप प्राप्त नहीं है । अमेर में सार होता है । वास्तव का अर्थ व्यवहार से अभिरूपजता का होता है ।

भेज के अनुसार उपमा लक्षण इस प्रकार है -

प्रवृंचारनुरोहितेः परस्परस्यायः

भूरो वयस्कमार्यायाः सहिष्णुमाता । संस्कृतीक्रियामण 4/5
इस में दीक्षित ने दोष पाए हैं । रक्त तो यह है कि उपमानोपनयन के साधारण को अंकितवाद-पूरक (आझूतिसूतक) मानने लो जहाँ गुण और बिया को ते कर ही साधन का वर्णन होता है वहाँ सक्षण की संगमति नहीं होगी । भोज-कृत उपभा स्वस्त में सामाय और प्रसिद्ध के अभिशय को भूत-मौति- समब तेने पर दीक्षित की वापसीया का सगमान हो जाता है । भाग्य-के अवय्व-सामाय-योग में सामायपद चर्म-चतूँच-परकर है । अतः इस का अर्थ गुण और बिया का योग है ।

भर्ममात्रक होने से गुणार्थ के अवय्वों के साधन का निर्विशेष होता है । प्रशिक्षेत्रनां- रोपने ' का भाव यह है कि निस उपभा में जो प्रतिभाओं और अनुभावों के सम में प्रसिद्ध है उसका अतिक्रमण न करना ही प्रशिक्ष का अनुरोध है । इस प्रकार प्रतीत आदि में लक्षण संक्रान्त न हो देहात । निम्न भद्र यूर में सूर्याणु के स्तन प्रसिद्ध हैं ।

उद्धरण्श्चरण-श्रीमहामर्णीश्चरणमद्यभूतंत्रश्चरणीश्चरणे श्रीमयम \[273\]

विभिन्न कलारितवाक्यांकर गर्गोको विचित्रोऽधिकृतपर्वो द्वादशमकबकर्त्तव्यमनि कृति ।

किंतु ये केवल उपमन के स्त्र में हैं । उनको उपमाल की कहना में भी प्रशिक्ष का अतिक्रम नहीं है । अतः दोष नहीं है । ये उपमान के संस्कृत में प्रसिद्ध होते हैं ।

उपमानमें ।

विवेकवर ने उपमन के पहले दो भेद किए हैं—पूर्णा और लुप्त । मम्मत की प्राति उद्धे भी पूर्ण छ प्रकार की मानता है । पूर्णमा में समान धर्म के आधार पर अनेक भेद होते हैं । कही समान धर्म केवल अनुया, विभिन्नतर्कितव्र भाव वस्तुप्रतिवादु-भाव, लेध, उपचार, और समाध-भेद से होता है । विभिन्नतर्कितव्र भावादि पाँच भेदों में से दो और तीन धर्मों के संगम में भी उपमन के 14 भेद उद्धृत हुए हैं । विवेकवर ने प्रत्य सभी उद्क्रमण जथगी ही दिया है । अतः परमेश्वर-विवेको शोकम । आति कालाकांस्थ पूर 43लोकम ।

प्रायोगिक आंशिकों में से किसी भी उपमन लुप्ता- को तकनीक नहीं माना था किंतु विवेकवर ने ( शोको पूर 116 ) तविश्वास उपमन लुप्ता को भी माना है और उसे तरक और प्रभावों से सिक्त किया है । मम्मत के अनुसार लुप्ता के 19 भेद हैं जब कि विवेकवर्ते दिन में रक्त और सोहा कर उन्हें इंच लुप्ता की संख्या 20 की है । पूर्णा और लुप्ता की मिता कर विवेकवर के अनुसार उपमन के 26 भेद हुए किंतु मम्मत के अनुसार 25 भेद ही बनते हैं ।
पूर्णोपमा

प्राचीन भावणी ने केवल यथा शब्द में ही वाक्यगण शौकी
पूर्णोपमा को में उद्घाटन किया है। ये शब्द के साथ लिख लिख के पध्म में है।
शब्द के प्रयोग में वाक्यगण नहीं हो सकती। विवेकवर ने भी यथा के प्रयोग में
वाक्यगण उद्घाटन की और साथ ही शब्द के साथ नियमसमा के विषय में विशेषगति
भी उठाई है। उनके अनुसार शब्द के साथ लिख लिख के साथ विवेकवर नहीं है। १ शब्द
के साथ लिख लिख के साथ वामन वृत्त उद्घाट होने संगुण। वामन के
विवेकवाण के साथ शब्द का साधन नहीं हो सकता। क्योंकि विवेकवर का विवेकवाण है ने
से शब्द के प्रि उद्घाटक निरलक्ष है। यदि शब्द के साथ लिख लिख का
विवेकवाण होता है, उद्घाटकवर नहीं बनता। क्योंकि उपमान पद के वाद
ही शब्द का विवेकवाण है। २ यदह वामन उपमान है न कि उद्घाट। वादित में
शब्द के साथ लिख लिख के पद को वैशारण ने प्रक्रियत मानता है। ३ वेदविदिका-
मत में भी वैदिकों ने दो पद दिर है। एक शब्द में साद है। और वेदान्त में
समावधित में। ४ अतः शब्द के प्रयोग में भी वाक्यगण शौकी पूर्णोपमा ही
सकती है।

1 - अ0 को0 पू0 101, व्याख्यान संहारसुत्रवाणी पु0 918 विवेकवर का
सकत संभवित उद्घाट (कथ्यकदारासरसरसार (पु0 15)) और समाप (कथ्य
पू0 443-भान्दाप्रभाम) की चेत है। इनके वाक्यगण में यथा का प्रयोग
किया है।

2 - इदांपद प्रांभ दिनुस्ते प्रयोग: तत्वीयोपालमान्यायी। अ0 को0 पू0 114

3 - कथ्य-प्राक्ष-प्राधिपुरोर्त पू0 18 समाप. चक्वीरकर

4 - गैंत्र्य-जीवितस्वर्यं भवति प्रतिक्ष्यं यद्विनिमित्तम समुदायुग्य:।

अनाविचित्तथा नत्या जन तद्भवो वर्गो महिमा विद्युत्। अ0 को0 पू0
शैलेश्य में प्रक्ष्णक विवेकवर का विवेकवाण है। अतः शब्द के साथ समास
छाड़न नही है।
श्रीता और अध्यि -

विशेषता ने उपमा के हन मेडो की चार्च

विस्तार से की है।

श्रीता और अध्यि के मेडकत्व के मुत आपार पाणिनि-

सूत्र है। उवाचे के प्रयोग में और तत्र तत्स्थ 5/1/116 से उवाचीविधि

वात के प्रयोग में श्रीता है। तुल्याचे और तेन तुल्य क्रिया चैदारांक 5/1/115

से विलियत वात के प्रयोग में और श्रीता है। सभी आचार्य हनके पोषक रहे है।

कुछ तोग उपमा के हन मेडो को नहीं मानते, क्योंकि उवाचे और तुल्याचे समान

स्वसंहविध कह सरीसृप है और वे यह भी स्वतंत्र नहीं करते कि उवाचे की तकित

से पर्यंत संचर उपमा और उपमेय में प्रयायित है जबकि तुल्याचे से पर्यंत 

कारण यह है कि रक का विशेषण दूसरे के समवन्य का चोपक नहीं होता।

उवाचे उपमान के विशेषण है। इस लिए हन से उपमान से ही द्रमसाधार

वोधित हो सकता है नहीं उपमेय में। विशेषता ने ( 50 बाद पृथ्वी 48) इस

विकास का सम्भन्त क्रिया है। चैत्रक घनमू में मद्दन का अर्थ स्वाधि है।

मद्दन का वाक्य चैत्र है। वाक्य होने से मद्दन का चैत्र में अन्वय है।

स्वाधितसाधन से चैत्र का घन में अन्वय है। इस प्रकार मद्दन का साधन चैत्र

और घन दोनों के लक्ष्य है। इसी मात्र संवृत्त घन में श्वस-शक्ति से

घन का अर्ध साधन है। यद्यपि दो नामयां का

अमेदान्य ही होता है। तथापि चैत्रक घनमू में विभाज्य साधन विशेषण

है जिस से दो नामयां का अमेदान्य होता है।

1- यथा भट्टि यथाप्रथम तै विशिष्णुध मनुष्याध्याय। सम्भव सा भुत्ति

संवृत्त विदित है। तैवानिविधि समानेश्वरयोगोजकर्तरमायविवाहात।

सुभा विशिष्णुमानेरयमेवमाहः वेणुतित।

काल्य प्रकाश-संकेत पृथ्वी 220 जानवाद्रम 192।

2- अतिकारकोहुम पृथ्वी 48 नागमेय में इस मत को प्रायितों का मत कहा है। काल्य

प्रकाश उद्घाटन पृथ्वी 441, जानवाद्रम।

इस का प्रभाव है।
र्वाय उपमान का विश्लेषण है । इस नियात वैश्वने में चन्द्र और मुख का 
प्रेमन्य है । यहाँ सादृश्यप्रतियोगिलसम उपमान का वैध वन से होता है,
जति स्रोत है - (अनुवाद ५८०-५८४)

अतः स्रोतातिले सादृश्यप्रतियोगितायथायोगमानकालयद्वितैः वोपनातु।

(५०६ योह ५०६) तत्सम्ब वह है कि हवार्क सादृश्य का बान प्रति-
प्रतियोगिलसम से चन्द्रन्य में है - सादृश्यप्रतियोगितायथायोगमानकालयद्वितैः वोपनातु।

इस प्रकार स्पर्श से प्रतियोगिलसम का बान और सादृश्य का चन्द्र में अन्वय है । यहाँ 
सादृश्यप्रतियोगितायथायोगमानकालयद्वितैः वोपनातु।

इससे प्रतियोगिलसम से चन्द्रन्य में तुष्य की उत्साहति नहीं होती ।
जति तुष्य के प्रयोग में उपमान की सादृश्यप्रतियोगिता शाब्रिषु में भावित 
नहीं होती । किन्तु अर्थात् शाब्रिषु के वनगे क्षण में होने वाला यह 
मानसान्त ही है ।

श्रीतयानम सादृश्य और ब्रह्म के संबंध को लेकर कव्यप्रकाश
के टोलकार महाराठ (न्याय प्रतियोगिलसम में) व शास्त्री का मण्डल भाग ) ने मीमांसकों 
के मत को अभाव ठहराकर न्याय-मत का प्रतिस्पर्धन किया है ।

मीमांसक कहते है कि 'घटमान्य' मे घटना पद जनय 
से अन्वेष्ट है क्ष्यां स्वयं को वोपित करते है । 'घटी न' मे अभाव वोप 
और स्वयं वन समान है । न्याय का अर्थ घटप्रतियोगिलसम अभाव है । जनय 
का प्रतियोगिलसम घट है । यद्यद से अर्थ केवल अभाव मान लिया जाय तो 
'घटमान्य', के स्मारक 'घटी न' के स्यां में ब्रह्म के प्रयोग से 'घटमान्य' की 
प्रतियोगिलसम हो जाय तो 'घटमान्य' की हो प्रभावित 'घटमान्य' के वन में 'घटमान्य' 
की प्रतियोगिलसम हो जाय । जहाँ सादृश्य पद से सादृश्य की उपरेयित है 
वहाँ सादृश्य में प्रतियोगिलसम उपमान का बन्धन करने के लिए ब्रह्मी वो साधारण नहीं बनता ।
इसी प्रकार जहाँ रच से सादृश्य की उपस्थिति है वहाँ भी नामार्थ के समान तत्
के अर्थ में बन्ध का अन्य-प्रयोग नहीं है। इसलिए बन्ध रच से पुरास्मू में
भी विशेषता आवश्यक होताई है। अतः इस का अर्थ केवल सादृश्य मानने पर
भण्डी होनी चाहिए। भाव यह है कि यदि रच केवल सादृश्यवाचक हो तो
इससे भण्डी के अर्थ का बोध नहीं हो सकता। बताइये इस के लिए भण्डी
व्यवस्था है। इस व्यवस्था को दूर करने के लिए यही सीमात्मक है कि
सादृश्यप्रतियोगिता इससे भण्डी की अपेक्षा नहीं रह जाती। अव्यक्तता
में विलक्षणसूत्र के बल से भण्डी की क्षमा में गौरव है। अतः निवासस्थल
में ही अवैधताभिप्राय है न कि तुनयादि पदों में। अन्यथा इत्यादि के प्रयोग
में वैधता और तुनयादि में अर्थी नहीं हो सकता।

नैपायिकों की उत्तर मत अभिमत नहीं है।
भण्डी न' में असमान नंद केवल अवधारण है। इस लिए प्रतियोगिता
समूह का भान संसार से होता है। नंद और अवधारन उन दोनों के वायराइ
एक से नहीं है। पक्षपातियों ने कहा है कि वही अर्थ अवधारण के
अन्यथा बोहित होता है, यद्यपि उसका भान कही संसार से है और कही
प्रकारता से -

य स्वयं भवसदुस्थाविष्णुनामयो योश्ये, कृतिवशयिबपथा
कृषिखिरकरत्या संकृदाघानात्।

हसी-लिए 'भण्डी न' में भण्डी नहीं है जबकि
'अव्यक्तमाथ' में भण्डी है। अन्वित अवधारन की अपेक्षा अवचय प्रकार योग हो
नंद भान का कार्य है। इस प्रकार संसार मयादा से प्रतियोगिता का भान होने
पर 'भण्डी न' में नंद की शक्ति नहीं रह जाती, वोले एक अन्याय है।
अन्यायासार शब्दाय इस न्या से संसार व्यों भण्डी में नंद की शक्ति कल्पना नहीं
है। 'छोटावांस' में भण्डी आवश्यक है। कारण यह है कि 'नीतोदर' में समान
विभाजक के दो नामार्थ है जिनमें समान है जबकि छोटा वांस में दो नामार्थे
समान विभक्ति वस्तु होने पर भी यहाँ दोनों का भेदान्वय अभिमृत है। दोनों

1 - बड़ो की टीका पृष्ठ न
विश्वास्क है। अतः यहाँ प्रतियोगिता के घट का अन्य अभाव से सम्बन्ध नहीं है। इतरपरस्परिन्दित पदों की न्यायाधिकता को मीमांसक आय्यातादन का नियमक मानता है। नैपालिकों के मत में यही पदों का नियमक है। नैपालिक के अनुसार अर्थ द्वारा अर्थ से अन्ययोक्त रहता है वहाँ पदों आय्यात नहीं है।

इस विवेचन का निष्पक्ष यह निष्कर्ष कि 'चन्द्रव शुभ' में प्रतियोगिता का न्याय संसर्ग से होता है। इसके लिए यह नहीं, किंतु 'चन्द्रव सदुस्मू' में प्रतियोगितवाहिक विशेषण के स्वरूप से होता है न कि संसर्ग से। अतः प्रतियोगितवाहिक के लिए पदों की अवधारणा है। व्याख्यातिक के मत से इस का सम्बन्ध होता है जिसका उल्लेख आय था। यह परस्परिन्दित के मत से इस का सम्बन्ध होता है। जिसका उल्लेख आय किया गया है। घट-प्रतियोगित अभाव में जैसे वेदों की शक्ति नहीं है इसी रूप से इसी अर्थ से चन्द्रव प्रति योगित का साधृश्य में शक्ति नहीं है। अतः (चन्द्रव सदुस्मू में निपात और रित) दो नामार्थ का संसर्ग है बनता है। इस में विमाण का अर्थ विशेषण है जिसकी उपयोक्ति विशेषतासम्बन्ध है। जब कि 'घटो न' के तरह सीवार के प्रयोग में निपात और नामार्थ का अभाव ही बनता है। नामार्थ की निपात के साथ जोड़ ने के लिए विमाण की उपयोक्ति आय्यात नहीं है।

विवेचन नैपालिक मत का सम्बन्ध करते है। कहा जा चुका है कि किस प्रकार 'चन्द्रव सदुस्मू' में जो अर्थ पदों का है वह कह इव के विभिन्त है। इसके विभीषित में 'चन्द्रव सदुस्मू' में निपात से साधृश्य व्याख्यात नहीं है। साधृश्य में प्रति योगिता के स्वरूप के बन्य अभाव को न्याययोग्यता नहीं है, इस लिए चन्द्रव प्रति योगिता के बोध के लिए घटों की अपेक्षा है, किंतु इव पद के प्रयोग और बोध के लिए साधृश्य रखने से विभिन्त है। यहाँ निपात-प्रहित की उपयोक्ति विशेषतासम्बन्ध है। प्रति योगिता का बोध संसर्ग से है। साधृश्य का चन्द्रव में अन्य शर्त है, इस लिए घटों की अपेक्षा नहीं है। अतः प्रति योगिता को भी इव का अर्थ आय्यात व्याख्या है।

1- जैसे 'नारायण' में दो नामार्थ का अभाव संबंध है। चन्द्र ही साधृश्य नहीं है। इसे द्योगित करने के लिए चन्द्र में घटो चाहिए।
2- अन्तर्दार्वक सूत्र ४८
चक्रवर्ति यदि समानार्थ प्रयोग में उपमान प्रकारक और उपमेय -
विषाणक बोध होने पर भी यथा के प्रयोग में (यथा चन्द्रमावधारम) द्वं के
समान बोध नहीं होता। यथा के प्रयोग में उपमान और उपमेय दोनों विभेद
है - यदुशास्त्रपञ्चकक्ष, तातुर्षाश्चतमनुष्माय। चक्रवर्ति ने यथा के समान द्वं के
प्रयोग में भी उष्ण-विशेषक बोध स्वीकार कर कहा है कि दुग्धकम (हस्तीव
पतलस्वन्त्र) में भी यथा शास्त्रावलंबन वही तातुर्षाश्चतमनुष्माय। यह ज्ञान है।
यहाँ पुनः प्रयोग भवत यथा में अन्य द्वं नहीं है। विषाणक विशेषक बोध की
मान्यता से यहाँ बोध है क्योंकि यहाँ दो नामायों की एक ही भाषा है और
उनका साधारण-भर्त सध्य शायद है। 'चन्द्र चंद्रायुरु मुख्रू' मनोक्ष्त' में विभिन्न
भेद है, इस लिए उपमान और उपमेय का साधारणपञ्चव पञ्च भी नहीं है।
जत: यहाँ आधी है। यथार्थ पदर्मपुरु मनोक्ष्त' में विभिन्न भाषा है, तथापि
उपमाननेमय भाषा का बोध प्रकी वत से हो होलता है। जत: यहाँ भी
आधी है। 1 भाषा यह है कि नहाँ उपमान और उपमेय में साधारण पर्यम का
संबंध एक विभिन्न से शाब्दमय में माध्वित होता है यहाँ बोध है। आधी में
उपमान और उपमेय की विभिन्न भिन्न भिन्न होती है, इस लिए साधारण
पर्यम शायद नहीं होता।

यह मत सम्पर्क नहीं है। इस प्रकार के एक्द को मानने
पर उपमा (चन्द्र चंद्रधरम रचनायमु) में दृष्टिगोचर। क्योंकि यहाँ विभिन्न
भेद नहीं, किन्तु लगभग है। इससे मुख्यतम मनोक्ष्त समान विभा है।
जत: तुर्क का चन्द्र में अन्य नहीं होगा जबकं समान-कर्मित वहाँ दो
नामायों का भेद भी होता है। आधी के उदाहरण में विभिन्न भेद है। भिन्न
विभिन्न वाक्यों की भाषा भिन्न लेंग वाक्यों का भी साधारणक्रिया से विशेषानिकीय
भाव नहीं होता। अंशित तत्त्व में इं लेखनियम हुआ तत्त्व धीयत है।

1 - अस्तित्वकौटन पूरा
उपमानेप्रमाण के रक्ष विविधत की यदि श्रीती का निवासक मना जाय तो जहाँ लिख में है वहाँ (चन्द्र इब मुख्य रमणीयम्) श्रीती नहीं होगी जबकि इब के प्रयोग से वहाँ श्रीती ही माननी चाहिए। अतः लिखयय या विभक्तमें से श्रीती और अधी का विभाग उपयुक्त नहीं -

चन्द्र इब मुख्य रमणीयम् इत्यादिपुपममाय दुपल्रपरिसात।
तत्रापि उपमानेप्रामायोरमिन्तियलिगत्य मनोिन्दलख्य गुणाधिवित्तय वचन न्यायशिवाय।

वहाँ पुर्व पक्ष की ओर से रक्ष तक उल्लेख है। 'चन्द्र इब मुख्य रमणीयम्' मे अन्य वाट रहा। पुलिंग का लेख हुआ। निपुल का रक्षवद्य डोराता है। रक्षवद से रमणीयम् ही प्रादत है। पुलिंग रमणीयवद का चन्द्र मे और निपुल रमणीय का मुख मे अन्य वाट है। अर लिखयय दोष माना गया या वह दोष अब नहीं रहा। दोनों का स्थान दोनों से उपमान और उपमेय मे साधारण घर विचार शास्त्र है। अतः श्रीती उपमा दूरित नहीं होती। फिर वह समाधान सैतोभनिक नहीं है। क्योंकि वहाँ उपमेय पुलिंग और उपमान निपुल लेख है वहाँ (कुलक्षेत्रियाण शामः क्लायः, च्यालियाण शामः क्लायः क्रो निलः) उक्त मत घटित नहीं होता। यहाँ भी दुपल्रपरिसात नहीं है। नियमात्साधारण घर और उपमेय दोनों का लेख समान होता है। उक्त उदाहरण मे साधारण घरम्य श्याम है। श्याम च्यालम्य - मे भी सूत्र 2/1/69 से रक्षवद करने पर 'श्याम्' बनेगा। कुलक्षेत्रियाण श्यामः क्लायः मे निपुलका रक्षवद निली भी प्रकार स्वेच्छा नहीं है और न ही सकता है, क्योंकि साधारण घर्म का वही लेख रहेगा जो उपमेय का है। उपमेय पुलिंग है तो उसका लेख मी वही होगा। 'कुलक्षेत्रियाण श्यामः क्लायः' मे 'चन्द्र इब मुख्य रमणीयम्' की तरह उपमेय और घर्म के लेख समान है। अतः कुलक्षेत्रियाण श्यामः क्लायः को दोषपूर्ण मानने मे प्रमाण नहीं है। उपमान और उपमेय के लेख भिन्नभिन्न हो तो दोष नहीं होता। वामन

1- वर्तकारकोषम् पृ. 52
का मत इस में प्रमाण है। यदि उपमा में भिन्न हीन के उदाहरणों में दोष माना जाय तो क्षेत्रवर्त वैधता प्रमाण भी दूषित होने । ^ 1 श्रीति में सावरण घर का शाष्ट्र बोध उपमानोपनयण की रक्षा किए के होता है और आयी में किसीत में सावरण घर शाष्ट्र नहीं होता। यह विवाद तर्कसंगत सिद्ध नहीं हुआ ।

सावरण घर की रक्षा ।

श्रीति में इत्या और र्मणियादान में से स्थानीय में की निराकृत होनी चाहिए थी, क्योंकि दोनों का अधि र्मणियादान है। र्मणियादान से घर की दो दो बार उपस्थित है। विश्वासी र्मणियादान का मुख के साधन अन्य नहीं होता। किन्तु दोनों के प्रयोग में स्थानीय में की निराकृत होनी होती। यद्यपि श्रीति में इत्या और शास्त्र-प्रयोग सावरणघर के स्थानीय के घर का बोध होता है तथापि सावरणघर शास्त्र-प्रयोग न होने पर घर की का बोध होता है। दब के अधि में और घर है।

और इत्या के प्रयोग में शास्त्र-प्रयोग से घर की उपस्थित है और स्थानीय के घरस्थानीय के घर की उपस्थित है। किन्तु जब घर का शास्त्र-प्रयोग है तब वह तात्पर्यमान है और वह ही र्मणियादान से घर के शास्त्र-प्रयोग है। अत: पूर्णिमा में घर का घर की उपस्थित है। दोनों में से किसी की हिंसन । नहीं होती।

1- व्यापक की चित्र दृश्यः पुनरुपयोगः प्रयोग-काल्याणकर सूची से पना इत्या मुख्य र्मणियादान और बुधदेशिक शास्त्र-काल्याणिक: में समान है। हीन भविष्य से बचत भाल के उपमा में व्यापक भाल भी है। प्राण इत्यादि-र्मणियादान में इत्या में उदाहरण है। यह व्यापक-भाल और विद्यालयमान विद्यालय-भाल भविष्य के उदाहरण है। दोनों ने यहाँ दोष नहीं माना है। इत्या है।

2- सावरणघर शास्त्रादेशों के अधिकार व इत्यादि-र्मणियादान भर्म, पृथ्वी । बाह्य-काल्याणकर 3/81।

3- यद्यपि शास्त्रादेशों के अधिकार निर्देशन किया । भाषक-काल्याणकर 3/81।
किन्तु चन्द्र इव मुख्याकृतयोऽति मे उत्तर संगीते विचारणीय है। यद्यपि आह्लादक धात्यार्द्ध है विषयक प्रतिपदिकार्य अध्ययन-संबंध से अन्यय सम्बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि धात्यार्द्ध और नामार्द्ध मे अवेद संबन्ध ही होता है। यदि विशेष नारे (गो कौ ४० पू ६७) का पुनर्ग्रहण है कि आह्लादक धात्यार्द्ध का ही अर्थ माना जाना चाहिए। धातु केवल ताल्लुकगाढ़ है। और जैसे पूर्वाध्याय मे इव प्रथमस्थापन है और रमणीयवत्त ताल्लुकगाढ़ है।

उसी प्रकार यद्यपि इव का अर्थ आह्लादक नहीं है और धातु ताल्लुकगाढ़ है। आह्लादक धात्यार्द्ध नहीं है। जन्तु विनियोगकार्य के अन्यय मे बापा नहीं है।

श्रीरति उपमा की मीमांसा की श्रुति से समानता -

श्रीरति उपमा का मीमांसको की श्रुति से रूपक साम्य है। श्रीरति मे उपमान और उपमेय के घर्घ का निर्वाह साधुपावाक पद के स्त्रयमे ८ श्रवण मात्र से होता है, क्योंकि इव आदि अपने समाज से ऐसा बोधित करते हैं। मीमांसा मे भी श्रुति है जो विनियोग विचि के चौक दे लिए। सहायक प्रमाणो मे पहला है। जिस केवल धुनने से अंगत्व का बोध होता है वह श्रुति है।

कहा भी है कि दूसरे पदो मे अभिधान करने के लए निरन्तर इव शुरू है। जीतोक के शृगे के तीन प्रकार है। इनसे विभक्ति-स्व श्रुति मे विभीषय के उदाहरण है अर्थविनन्तबोधन और नीतिभवन प्रश्न। अवधारन और ग्रंथ के प्रति विभीषयों विभाबद्वारा नीति जीत वनते हैं। 'नीताविनन्त' सूक्ष्मज्ञान

1- अन्तर्यामिको बहुसाधृतवास्त्वप्रेममन्लाभं गो कौ ४० पू ६७
2- विनियोग का अर्थ ह ह अवगोभिः। अगोभिः करने वाली विभिन्न विश्वास विशेष है।
   यद अंगत्व दूर से उद्देश्य से प्रश्चितशिरा के नारक के स्त्रयमे विविदित होता है।
   इसके विषय के लिए शुरू, तिंग, बाच्चा, प्रकरण, वास्त और सम्बन्ध - ये
   सहायक प्रमाण है।
3- अभिमुखु पदेशु प्रतिभेशु निरन्तरो रवी श्रुति। बो ४० कौ ४० पू ७।
4- विभक्तिसम्म, साधारणाभिन्नम् और रक्षसस्म। विभक्तिसम्म मे प्रथमा और पहली
   से रहित सभी विभक्तियों का समावेश है। दम्मा ज्ञाति - तृतीयाश्रुति का उद्देश्य है।
फल के बोध के लिए किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं है। इसी से ब्रीड की क्रिया
(अवहनन) के फल का बोध होनाते हैं। इस प्रकार भीमसेन के अनुसार
विद्वानविभक्ति वृत्ति है। 1 उभयनिष्ठ धर्म के बोध के लिए मानकारीकों
के द्वि को भी श्रीति में दूसरों की अपेक्षा नहीं—वह भी निरपेक्ष है। इस
प्रसंग में रक्ष प्रसा है विषय को भी भीमसेन की विद्वानविभक्ति के समान निरपेक्ष
माना जाय तो इस से उव साधुर्य-बोधक नहीं होता है। ब्रीड के पद के समय प्रयुक्त होने पर ही उव साधुर्य-बोधक है। इस दशा में इसकी
निरपेक्षता की जिम्मेदारी है। इसका समाधान यह है कि क्रिया (अवहनन)
और प्रकृति (ब्रीड) दोनों समावेशार से ही विद्वानविभक्ति विभाजनीय
की विद्वानविभक्ति पल का बोध कराती है। इस लिए यदि द्वि के निरपेक्षता से
द्वि की साधुर्यवैष्णवता को निष्ठ माना जाय तो भीमसेन की विद्वानविभक्ति-
स्म वृत्ति भी इसी वैष्णव में आकर अपने वृत्ति से हाथ घोड़ी थी। और
यदि यह कहा जाय कि भीमसेन के उक्त वैष्णव में क्रिया और प्रकृति की अपेक्षा
होने पर मानव विभक्ति अर्थ को बोधित करने का सामयिक केवल विद्वानविभक्ति
मै ही है तो उत्तरधार त्त्य में भी ठीक यही नहीं है। चन्द्रमण साधु होने
पर भी द्वि से ही धर्म के उम्मीदवाल बोध का निर्वाच होता है। उम्मीदवालता
के बोध के लिए मुलातंत्र पदान्तरवेती है। उत्तरधार त्त्य में चन्द्रमण की
अपेक्षा है। चन्द्र। द्वि मुख्य में चन्द्रमण विभक्ति केवल पदसाधु में लिए ही
प्रयुक्त है निलक उपमन के साधु के लिए, भिन्न उपमन त्त्य में त्त्यवाद साधु
उपमन के साधुनात्मक के लिए है। इस प्रकार यहाँ विभक्तियं वृत्ति भी अधिक
अपेक्षा है। ज्यां उत्तरधार और त्त्यवाद में चन्द्रमण की साधनता समान नहीं है
और साधु ही धर्म के उम्मीदवाल बोध के लिए त्त्यवादत्त्य में पदान्तरों की अधिक
अपेक्षा है।

आयी –

त्त्यवाद के प्रयोग में आयी उपम निर्वाच होती है।
लिख प्रकार इन्हें अर्थ साध्यता नहीं फिर साध्यता है इसी तरह
(आद ३०० पृ ६३) तुल्य पद का अर्थ भी साध्यता है । तुल्य का
अर्थ साध्यता मानने पर तुल्य के योग में बोध होगा - साध्यतिमने मुख्य ।
यहाँ साध्य और मुख का अभेद हो जाता है । क्योंकि दोनों निषादभिन्न नामार्थ
है लिखा अभेदसंबंध ही बनता है । अतः साध्य और मुख में भेदात्मक करने
के लिए तुल्य का अर्थ साध्यता कहा जाता है । तेलन ते तुला मना है ।
सूत्र ४/४/९१ से यादवांके उल्लिख साध्य
अथवा तुल्य के अर्थ हैं - चन्द्रमे भेदसमानाविकरण ( चन्द्रमे वृत्तिवत् ) और
यर्थ ।
यदि तुल्य पद का अर्थ केवल भेदसमानाविकरण किया
जाय तो प्रातिष्ठाकर चन्द्र का प्रत्यायोगात्सर्वेश । भेद है । इसी चन्द्रमे वृत्तिवत्
कहा जा सकता है । इसी तरह तुल्य पद से केवल चन्द्रभिन्न अर्थात मुख का घरे
बेरोध होता है । तुल्य में यादवांका अर्थ किसी का आश्रय होना है । तुल्य
पद का अर्थ आश्रय ( आश्रय ) मानने पर अभेद संबंध से आश्रय का मुख में
अन्वय होगा । आश्रयभिन्न मुख्य ! अतः तुल्य का अर्थ साध्यत्वक है ।
अव वृत्तित का प्रत्य है । 'चन्द्रेण' में तुरिता का अर्थ वृत्ति
है । 'चन्द्र ' में तुरितावोपित वृत्ति चन्द्र का एक श्य है जो रमणीयत्वम्य
ही है । चन्द्र का वृत्ति यह में और वृत्ति का भी घरे में अन्वय है । यदि
तुल्य का ही अर्थ वृत्तिवत मान किया जाय तो चन्द्र और तुल्य के सीधे तुरिता की
विभमता दूर होगी । बीच में तुरितार्थ से वृत्तिता नहीं करनी पड़ेगी ।

1- अधिकारपूत्र ( सैमायापू । ) से तुल्य शब्द वैयकरण के अनुसार स्पष्ट है ।
इस तरह तुल्य सद्वस्यात में प्रयुक्त होता है ।
तुल्य समानी तुल्य । समानी समानी सद्वस्यात्मक । ययातुला पारंबिकनात
परभेंद्र तत्वमीत । कशिकाभित्र पृ ३५८ चौरस ० सी ० डू साकरण ।
तुल्य से ही काम चल जायगा। परन्तु यह कहाँ तक संगत है? चन्द्र में तृतीया
होगी चाहे उसका अर्थ वृत्तिल मान ते या नही। उक्त प्रसन का समाधान
करते हुए विख्यात का सुझाव है कि तृतीया के भी तुल्य पद का अर्थ
मानने से काम नही चलता, क्योंकि तृतीयार्थ (वृत्तिल) के विना
चन्द्र और तुल्य (नामाग्नियो) का अमेदन्वय हो जायगा -

अतएष वृत्तिलयार्थं तुल्यार्थम्यय न निसारः।

नामाद्यातामायतः।

तात्वर्यं यदी कि उक्त वृत्तिल के विना चन्द्रार्थवर्य
के सम्बन्ध के तुल्य में भेदार्थ नहीं हो सकेगा। तुल्य के योग में सूक्ष्म 2/3/72
के अनुसार विलक्षण से तृतीया होती है। यद्यपि तृतीया विधानभाषा से
'तृतीयार्थं वृत्तिल' में सूक्ष्म संगत नहीं आती, तथापि तुल्यार्थ में अनुगत
विलक्षण मानना चाहिए। इस अर्थार्थ से वृत्तिल को ही तृतीया का अर्थ
केंद्रतित किया गया है। इस से प्रकृत्यार्थ (चन्द्र) का अन्वय प्रसूति (वृत्तिल)
में उपयोग हो गया है। इस प्रकार तुल्य के उक्त अर्थों से शारीरिक
सामर्थ्य जुड़ती है। तुल्यार्थवर्य चन्द्रदेवमानापाकरणकुः कृति (चन्द्रभिस्त वृत्ति)
और तृतीयार्थं चन्द्रब्रूत्तिल का अर्थ में अंजन् करते है। तुल्य के यथार्थसाधर्य
साध्य में अर्थ का अमेदन्वय है और अर्थिक अर्थ का मुख में। अतः चन्द्रभिस्त-
वृत्ति जो चन्द्रब्रूत्तिपर्यं, तद्वर्य से मुख अर्थस्य -

चन्द्र वस्यप्रायावार्थमानानीपरिकरणचन्द्रवृत्तिपर्याभिधनकामभिषम्यम्
(सो को पूर 7।)

1- अर्थकारकोषकृतम पूर 7।
2- वृत्तिलचत सुबुतीर्थमयनय पदात्माम्योपधपते । अर्थकारकृतम
कॊफ़ा पूर 7।
आर्थि में चन्द्रभिषुन्त से धर्म की केवल उपमेयभ्रीतता का जीव होता है और चन्द्र में तुलनिया से उपमान का उपमानोपमेय की साम्प्रदायिति तुलनात्मक से नहीं, किंतु अर्थ से होती है। क्योंकि वह पद एक ही भाग में विश्वास रहते हैं। इस प्रकार धर्मवाचकता तुलनात्मक उपमेय के ही बोधक है न कि उपमान को। धर्मवाचकता यह भी माना है कि तुलना पद से कही उपमेय से, कही उपमान से और अन्य दोनों से भी समान हो जाता है।

अन्यथा में किंतु विशेषता के अनुसार ( अ 0 को 0 पू 0 ) धर्मवाचकता उभयगत धर्म का बोधक नहीं है।

अत उभय धर्मवाचकवार्ताओं न भवत्यत आदिद उपमेयभ्रीतते।

श्रीति में उपमानोपदेशर विश्वास केवल पदसाधुता के लिए है जब तक कि आदि तुलनिया उपमान के साधुस्य को बोधित करने के लिए है। अतः दोनों में पदसाधुता की अपेक्षा समान नहीं है। इसी संबंध में रक दूसरे उदाहरण ( चन्द्रभिषु गुण पश्चयी ) पर भी भवत्यत होता है।

यहाँ गुण विशेषण है और चन्द्र विशेषण। विशेषण में विशेषण के ही लिंग का होना शैलविन्द्र है। 2 इस लिए चन्द्र परतोतर विश्वास पदसाधुता के लिए है। पहले उपसंहार होने के कारण केवल पदसाधुता के लिए चन्द्र में प्रथम विश्वास के प्रयोग सम्मत नहीं है। विशेषण से भिन्न स्थल में ही पद साधुता के लिए प्रथम विशेषण का प्रयोग होता है जबकि यहाँ एक विशेषण है और दूसरा विशेषण।

'चन्द्रभिषु गुण पश्चयी ' में बक्ता का आध्यात्मिक पूर्णोपन्न के समान नहीं है। 'पश्चयी' से बक्ता यह कहना चाहता है कि अंतः चन्द्र को देखता है अंतः गुण की। इस में उपमा अवश्य- सी हो जाती है। मुख का विशेषण चन्द्र है। अतः चन्द्र का लिंग भी चन्द्र होना चाहिये जो मुख का है।

पर यहाँ समान लिंग होना शैलविन्द्र है न कि नियत।

1- साहित्यवर्ण
2- अनशंसिते 2/3/1 में भाष्यकार के कटपरोतर विनियम से ही कर्मवर्त का प्रत्यय गन्त माना है। देवधर - महानयन पू 440 प्रथम भाग कीलहार्त 20 संकरण।
दोनों के लिए के विभाग में विवेकवार ने रक और बात उठाई है।
उसका समाधान भी किया है। अद्वयविशेषण नर्त्पुक्क होते है। इस नियम
से श्रौती में चतुरव नर्त्पुक्कलिंग में होना चाहिए। हव बत्तय है। उचार्थ
साहित्य का इसे समाधान दे विशेषण चन्द्र है। इसके समाधान में मून
2/1/55 पर महामाय

श्चलीव श्यामा श्चलिवाभा। मृगीच चपता मुगवला।

यहाँ उपभावनुवृत्त लिंग ही सुरक्षित है। यद्यपि
श्वा श्चलुद इवार्ध का विशेषण है तथापि वह नर्त्पुक्क लिंग में नहीं हुआ।
इसी तरह रव ( पार्थिव रव धनुर्विंश गार्वस्य) के प्रयोग में भी पार्थि
शव का पुलिंग द्वी ही रहा। शश्त्री जी मृगी का स्त्रीलिंग निवित है उसी
श्रोर का चन्द्र का पुलिंग निवित होने से चन्द्र के साथ हव का प्रयोग होने पर
भी चन्द्र की पुलिंगता जोकी-नयो है। अतः भाष्यकार का अन्यत्र लिंग के
शहदों के विषय में यह ( अद्वयविशेषण नर्त्पुक्कलिंगत) नियम जगीत
नहीं है।

यहाँ हव के रूप में खुबसूरत (वद्यस्तुला) का प्रयोग है,
यहाँ हव की माति भारती उपभावनु देशें ने बोधित करती है। और
'चन्द्रे मुखे च तुल्य- आदि में च शवार्ध के इतरेतरयोग बत से तुल्य पद्म-के अर्ध
का चन्द्र और मुख दोनों में रक साथ ही अन्यत्र स्वीकृत है। अतः इसके दो बोध

1- महामाय पृ 397 कीलात्मु तौ संस्करण
2- अथवतिलगितप्रबधार्या उत्तरादानम्स्य भाषायिरव्यतत्वात।
अधो को 0 दीक्षा पृ 73। यद्यपि भाष्यकार की अपेक्षा कौशिक के
प्रयोग संतत्रस्य से प्रमाण नहीं है और सूत्रवाख्यार्या में भी ऐसे
प्रयोग नहीं मिलते। तद्वापि भाषा प्रयोग का संतत्रस्य है। अन्य प्रयोग
तात्स्यगाणक है, इस लिए भाषा के साथ आदि का प्रयोग है। अथवा
आदि से निकलकार को भी लिया जा सकता है।
3- अर्जुकारकोशतम पृ 71।
०प होते है -

जो न्यायिक शैली में इस प्रकार है -

१- चन्द्रभिन्नब्रह्म जो चन्द्रभिन्न घर्म- इसका आशय मुख है - चन्द्र प्रतियोगिता का -

योद्धामायासमानाध्यक्ष - तद्वृत्तियमक मुखस्वरूप ।

२- मुखभिन्नब्रह्म जो मुखभिन्न घर्म - इसका आशय चन्द्र है - मुखप्रतियो-

गिकन्यो - यामायसमानाध्यक्षकरणमुखस्वरूपवृत्तियमक चन्द्र।

पहले मुख उपमेय है और चन्द्र उपमान और दूसरे में

चन्द्र उपमेय है और मुख उपमान। इसी प्रकार पहले वेद में मुख विस्मय है, और चन्द्र विस्मय तथा दूसरे में चन्द्र विस्मय है और चन्द्र विस्मय।

इन दोनों बोधों से दो प्रकार के संयमों के लिए संृतत्त्व हो जाता है। संयम है -

चन्द्रभिन्न के समान है या नहीं और मुख सादृश्य चन्द्र है या नहीं। इस प्रकार

शाय के बल से ही तुल्य के अर्थ का चन्द्र और चन्द्र में स्क सादृश्य अन-वय

हो रहा है ताकि तुल्य पद के कारण, इस कारण इसे श्रीद ही कहा जा

सकता।

निप्पणी - शैली

निप्पणी यह है कि श्रीद में सादृश्यवाचक पद ही उपमान

और उपमेय के सादृश्य का वेद है जबकि आधार में सादृश्य योग लाई

तुल्य दि पद से केवल उपमेय के सादृश्य का वेद होता है। शैली में सादृश्य-

प्रतियोगिता नात्मक उपमानात्मक की चन्द्र में और सादृश्यप्रतियोगिता उपमानात्मक की

मुख में निप्पणी प्रतियोगिता है, किन्तु आधार में उपमान और उपमेय के विद्यमान

होते पर सही चन्द्रभिन्नत होता है ही उपमानात्मक की प्रतियोगिता है और तुल्य का अर्थ

चन्द्रभिन्न सादृश्यवाचक अर्थी चन्द्र-निप्पणीतिवृत्ति होते से उपमानात्मक घर्म का

बोध होता है। इस प्रकार आधार में उपमान और उपमेय दोनों के सादृश्य

की प्रतियोगिता में विलय का अनुसरण होता है जबकि श्रीद में प्रत्ययमान द्वी पर्म

की उपमानिष्ठता का वेद होता है -
उपमा - शाब्दिक

रसगंगाधर में उपमा प्रतिमादक चौदह वाक्य है। इनमें से कोन्या वाक्यों को शाब्दिक को लेकर विवेककर ने नवन दृष्टि से विचार किया है। वे वाक्य हैं - अरविन्दसुन्दरमृ अरविन्दसुन्दरमृ अरविन्दसुन्दरमृ अरविन्दसुन्दरमृ अरविन्दसुन्दरमृ अरविन्दसुन्दरमृ अरविन्दसुन्दरमृ

अरविन्दसुन्दरमृ के शाब्दिक के विपरीत में मीमांसक वैयक्तण और नैयायिक के मत है।

मीमांसक साधृव्य को विश्वेद पदार्थ मानते है। उनकी दृष्टि से सुन्दरपद के साथ अरविन्द के अर्थ का अन्य नहीं हो सकता। अतः

तक्षण की जाति है।

अरविन्दसुन्दरमृ निर्वक्षेति तास्मात् छायान्तरित विश्वासहृदयोऽपि सत्यमेव वातधिकसर्वविद्यामिथि च। यथो विद्यव्रभिन्न निर्वक्षेति विश्वासहृदयोऽपि

वैयक्तण की घातणा है कि समस्त पद में मूक समस्तक्ति है।

समुद्रस्ये तास्मात् छायान्तरितवातीर्थविद्यामिथि च। व्याय विद्यव्रभिन्न निर्वक्षेति विश्वासहृदयोऽपि

इस से अधर अर्थ अवगत हो जाता है। अर्थ-अर्थ अर्थ का यथास्थि समस्तक्ति से समस्त होता है।

तंत्र नैयायिक ( अर कौन पूः ७९) समस्तक्ति को मानने में गीतक समझने है। अतः वे तक्षण के ही पद में है।

इन तीनों मतों के विवेककर का दृष्टिकोण विश्वभूमि वार्णन है। उनका मत है कि अरविन्दसुन्दरमृ में समस्त वाचकता है जो उन्हें तीनों मतलबों को मानने में असुगत होती है। २ सभी आयार्थ मानते है कि

1 - अर्द्धकौशिक पूः ७९ व्यायानिविधान ऊधानांविधान पूः ८० ९५८
2 - अर्द्धकौशिक पूः ८० ४५८
सम्भव हैं उपर्युक्त के साधारणधर्म के साथ वाचकलुप्ता होती है। तथा करने में सधृश्यवालक पद श्रृयमण होने से यहाँ वाचकलुप्ता सिख नहीं होती। सधृश्य में विसंग पद की तक्षणा करने वाले सधृश्याधिक के समथ में विद्यमान रहता है। बता-तक्षणा करने पर यहाँ बाचक लेख नहीं माना जा सकता।

सुदर्शन के साथ अरिक्षण का संबंध ही यहाँ वृत्त है। वृत्तिवाक्य सधृश्य की उपलब्ध करने वाला पद ही सधृश्यवालक है। वृत्तिवाक्य की अण्वेषण तत्त्वविज्ञान का ही निश्चय करते ही गौरव होगा। यदि सधृश्य में तक्षणा के साथ ही वाचकलुप्ता भी स्वीकार कर जाय तो पंजितराम को यह स्वीकार करना होगा। के तुत्त्वाणि तक्षणा तक्षणा सधृश्य में होने से 'अरिक्षणसुभरण' में बाचक लेख होता है। यद्यपि वे वृत्तिवाक्य की स्वीकार और अर्थ का भेदक मानते हैं तथापि वे विनिर्देश के स्थल में वाचकलुप्ता नहीं मानते। 1 तथापि वे विनिर्देश के स्थल में वृत्तिवाक्य (तक्षणा) में बाचक लेख नहीं है।

पर्यंत, बाचक और उपर्युक्त के लेख में तक्षणा मानने पर बहुत कुछ तरीके होते हैं। जब मृगनयना (मृगनयना इत्यादि नवनीकरण यथार्थता) में समाधान और उत्तरपद का लेख दोनों कर्त्तव्य होंगे तभी यह विनिर्देश का उत्तर होता है। किन्तु यदि मृगनयन सदृश्य में मृगनयन की तक्षणा मानने की जगत तो उज्ज्वलित भूमि के रहने पर न उपर्युक्त का लेख कहा जा सकता है और न मृगनयन सदृश्य से बाचक-लेख। 2 इसी प्रकार विसंग भर्ने के तक्षणा होती है। उसी भर्ने यदि यह सुनवा मानने जाय तो मृगनयन में बाचक और उपर्युक्त का ही लेख होगा: न के पर्यंत का। दोनों हीं प्रकार समाप्त से विनिर्देश होता है। बाचक व्यक्ति के लेख में तक्षणा का भाषण मानने पर उपर्युक्तकल्पना के उद्योग (कल्पनासूधरण) से विनिर्देश होता है। यहाँ उपर्युक्त में सदृश्यता

1- रसगौरव पृ0 251-252 कल्पनासूधरण
2- अत पय यह मृगनयनसदृश्य तत्त्वकल्पना तत्त्वकल्पना तत्त्वकल्पना तत्त्वकल्पना कल्पनासूधरण पृ0
की लक्षण करने पर सदृश्यव्यवस्था का अभाव होनाता है। अतः दितुपन की
वर्णका कर कार्यान्वयन के दीर्घकालीन साहित्य आदि में सादृश्यप्रतियोगीय उपमान -
वाक्य के विद्यमान रहने से वाक्यालेक नहीं माना।

अर्हितनिर्मित्वार्थ भाषा में भा का अध्य प्रतीत है और इतिहास का
भाष्य साध्य। इसमें विषयेक्ष ( आठौ पूर्ण 83 ) ने साध्व के कार्यान्वयन में नदी का महत्त्व की है। विषय में सादृश्य विशेषण है उपमन्युत्पक
पद्धति उपस्थित है। इस कथा का कारण यह है कि 'अर्हितनिर्मित्व मुख्य' की तरह ही 'अर्हितनिर्मित्व भाषा' भी है। जगन्नाथ और विषयेक्ष दोनों साहृश्य को विशेषण मानते हैं। दोनों के मतों अन्तर यह है कि प्रेमित करण उसे
प्राप्ति ले जो नहीं है जबकि विषयेक्ष सादृश्य में ही सादृश्य को अन्तर को उपयुक्त
समझता है। इस प्रकार अर्हितनिर्मित्व भाषा का विषयेक्ष-कृत वैषय रसगौर्णर-
कार से विन्यास है।

1) अर्हितनिर्मित्वसादृश्यार्थार्थवीज्ञान धार्मिक व्याथार्थव्याकरण-प्रयोगप्रणाली - (रसगौर्णर पूर्ण 247)।

2) अर्हितनिर्मित्वसादृश्यवन्मुख्य - आठौ पूर्ण 84

सुन्दर वर्ण के उपलब्ध में भी उक्त वाल्मीकि में सुन्दर युद्ध जाता है। सादृश्यबंधन साध्यार्थविधि का बहुतार्था में सन्दर्शक दो मानस वैश्य होता है।
प्रेमित करण और विषयेक्ष के मतों में यह अंतर है कि जगन्नाथ के अनुसार सादृश्य
धार्मिक अन्तर ने यह माना है कि सादृश्य का अन्तर
मुख में ही है न कि प्रेमित करण में।

- अर्हितनिर्मित्व सादृश्य से सदृश्यसाध्यान्वयन स्कपा के लक्षण कृता तवानी
सादृश्यविशेषता दितुपन-व्याख्यात्विशेष सादृश्य-प्रतियोगितासाध्यान्वयन-क्युर्णदलरसाधन साध्यान्वयन - इति व्याख्यान व्याख्यात्विशेषा विशाल।
अर्हितनिर्मित्व पूर्ण 82 उपमान

-
'अरक्षनिमित सुनवर मुखम्' के विशेषरूप साध्वेध से संस्कारमित हो जाता है। इवार्थ सावृक का साय सौन्याः है जो मानसावधि है। मानसोत्तर हो संस्कारमित होता है। सौन्याः की मानसावधिता सैम्य को दूर करने में सक्षम नहीं होता। ततः 'अरक्षनिमित भाष्य' का वीर्य इस प्रकार मानना चाहिये।

अरक्षनिमित्तिसावृकविनिमित सावृकम्। अथ को ४० पृ ८९।

इरे नहीं माननेपर कर्मकारण्यं वेमिवारे होजाता है। अर्थात कारण के विना भी कार्य की उपस्थिति होजाती है। इवार्थसावृकतः कार्य गोष्ट कार्य है। यहाँ मुखालिम उद्देश्यार्थक परवन्योपासित है। है। हेतुहेतुमद्यात् से सावृक की वाचन्यगति अथवा विना गोरव है। इसी प्रकार 'अरक्षनिमित भाष्य' में उपस्थित से हो सावृक को लिखित मानने में अस्वांति नहीं है। यहाँ थातु धान का विभाजन है। तात्पर्यमात्र है। भाष्य से यह विविध होता है। के यहाँ वक्ता का तात्पर्य फिर अर्थ में है।

अरक्षनिमित्तयो भाष्य में संस्कार है, क्योंकि यहाँ तुष्ट से नभेने उपरेष हेमा। अर्थात कुलाक को पुत्राग हें। अरक्षनिमित्तेमुस्त्रेय भाष्य 'मुख नर्सक है। अतः तुष्ट का पुत्रक होना जावक्ष्य है। क्रियावृत्त का नर्सक हेणा रूप है। अतः पुत्र सीमानें के लिए अर्थात्र प्रयुक्त है।

इस से स्पष्ट है कि सावृकवात ने लिये उपरेषक ने लिये के ही सन्तान होता है। अतः मुख दे ही सावृक का अन्य सा है। धान (भाष्य) में सावृक का अन्य सा है।

पादर्थ में सावृक का अन्य सा मानने में अनेक दोष भी है। सावृक नियातंत्र नामार्थ है। अतः पादर्थ में भेष से उसका अन्य सा है। सावृक और पादर्थ का अन्य सा है। अर्थात सावृक—भिन्नासर्पित भोक्ता। अथ को ४० पृ ८९।
यदि तुयानिर्माण में तुम्हारे कोई तलकना मानती जाय तो और
भालूद व अपसराई के बदरा अन्य कर लिया जाय तो अरक्षननुकूल त्याग निर्माण होगा। व्याख्यान के (र्यायाविशेषणों कोई नहीं निर्माणलेखन) नियम से अरक्षननुकूल त्याग ही बनेगा नक् अरक्षननुकूल त्याग। इस आपत्ति के उत्तर में विषय में विवादों
ने चिन्तायादेशों के नरुमक होने के नियम के केवल 'स्वीकृत पद्धति' में ही माना है, अरक्षननुकूल त्याग' में नहीं किन्तु इस संदेशात्म में नहीं माना का अभाव माना तो
है -

संस्कृते प्रमाणार्थ अरविन्दकौर नु 88

इस विशेषज्ञ ने बार को (नु 88) की टीका में
यो सट लिया है -

र्यायाविशेषणों नरुत्क स्त्राविनिक्वलित्यां 

तब वचने
उक्तन, ततो व्याख्या सुस्त होत वेतन्यादनुतु।

यदि तुम्ह र्यायाविशेषण है तो वह नरुसक है। नहीं लिंग-
विशेष के विकस्ता नहीं है, वही नरुसक का ही प्रयोग होता है। भाष्कर ने
समान्य नरुसक के व्याख्या में कहा है -

र्यायाविशेषणयों विनायक यदिम किन्म जायस्त, नरुसक स्त्राविनिक्वि रूपांतरः -

अरक्षननुकूल के विषय में एक प्रमाण और रह जाता है।
कुछ लोगों का मत है कि लक्षण के बदरा भाग से ही पूरा वर्त (सहायप्रकारक
बाद) ग्रहीत होता है। तुयानिर्माण अवयवमाध्यक है। अरक्षननुकूल के विषय इस
लिए ना कि यही वचन का है वर्त में लक्षण करने का ताप्तर्य है। उसका
स्वयं कोई वर्त नहीं है। इस पूर्ववर्ती मत का उल्लेख पंडिताराम (रस-
गैतरा पु. 250) की भूति विशेषज्ञ (व. को. पु. 89) ने भी किया
है। भाष्कर जगन्मुण ने इस मत का कोई उत्तर नहीं किया। विशेषज्ञ ने

- महामाय
उस पूर्वपक्ष का खण्डन किया है। उनका तर्क है कि उक्तमन्त्रक को मान लेने पर तुम्हारे साधुक्य के उद्योगक नहीं रहा नहीं। तुम्हारे साधुक्य की उपस्थिति अवर्तन होती है। लक्षणों से पातु का अवर्तक साधुक्यकारक बान मानने पर उम्मीद का अवर्तन कराई में पड़ जाती है।

तुम्हारे पक्ष साधुक्यानुजाक्यकले उक्तमाना अवर्तक्षावर्तक्षयमात्।

और साधुक्य को केवल तात्पर्याक करना संगत नहीं है, वरन्तु श्रीते और श्रीते के व्यवस्थापक के रूप में से तात्पर्याक का मानने में प्रभाव नहीं है। किंतु भी अवसर ने तुल्यकन के तात्पर्याकत्व को श्रीते और श्रीते का केंद्र नहीं माना है। तुम्हारे तात्पर्याकक मानने पर अर्थित में तुल्यका निरस्त्रक तुल्यका। सदृश व्यवस्था उत्कल्पन होकरागी।

इस प्रश्न में यह कहा जा सकता है कि पहले तुल्यकन का स्वार्थ खिलाड़ हो तब उसके योग में तुल्यकन विनायक तस्मात् तुम्हारे तात्पर्याक मानना वाहन। इस प्रकार तुल्यका 'तर्कशेष' भाव प्रयोग होता वाहन। किंतु इस परिपक्वता । में भी अवसर के साधुक्य का भ्रमण पाल्पर में हो होता है। इस प्रकार साधुक्य का रस्तेराज्य अनिवार्य होता है जबकि साधुक्य अनिवार्य है। साधुक्य में तक्षण और द्वान (पाल्पर) में साधुक्य मानने पर यदि साधुक्य का अनिवार्य भ्रमण पाल्पर तो तब भी तुम्हारा मुख्य साधुक्य आपके।

इस प्रकार तुम्हारे के योग में श्रीते ही जाता है जो रूप नहीं है। अर तुम बुध दुःख कहा है कि तुम्हारे से विद्युत साधुक्य की प्रतीत होती है। किंतु हम उसे श्रीते कहते हैं। तुम्हारा वर्तमान साधुक्य है जिसका अन्य मुख में ही संगत है।

'गण रूप गौरि विवृति' और 'पिक रूप रौद्र रौद्र' मे जगनाथा ने कर्तारों को बिहारी में उपासना वोल्फ्स पत्ता की लक्षण मानी है जिसके बारे में गण का अर्थ है धारण का चल और पिक का अर्थ है केंद्र को बोली। उनका प्रमाणात्मक व्याख्या विषय है -

गणमन सदुर्गनबनानुसूल रुपेर्यागधर पृ0 २४८

इस में प्रतियोगी स्थान से साधारण में उपासना बन्धत है।
और अनुयोगी सा से साधुक का अन्य धार्मिक में है अतः विषयवस्तु समायोग ग्रहण कर जिसे साधुक का अन्य धार्मिक में है -

गवीरकायपुषुभ गमनानुकृतकृतिमनः (अत्वा कोटुम पु 90)

साधुक साधारणधार्मिक का धार्मिक है वह दूसरे धर्म का भी निर्भरत है। दूसरे धर्म ग्रहण का सूक्ष्मता जानना चाहिए के बजाए के किस साधारणधार्मिक में साधुक का तात्त्विक है। द्वारा धारण होने पर विशेष कर दूसरे धर्म वाला धार्मिक प्रतीत होता है। गमनान्तर की साधारणधार्मिक में गमनान्तर समायोग नहीं बनता। और किसी प्रकार प्राप्त साधारणधार्मिक में कर्म के साधुक का अन्य स्वीकार करना धार्मिक है। किसी प्रकार का उत्तर उत्तर भी दिया ना सकता है। नहीं यह साधुक धार्मिक है (सिसका साधारण ग्रहण है) यह धार्मिक के गमनान्तरधार्मिक का धारण मान्य है। वताधार्मिक में साधुक का अन्य सम्भव नहीं है। इस संबंध में उल्लेखनीय है कि लोग के साधुक (भर्त्र) से साधुक की विवस्तु में 'एक हरव ग्रहण ' प्रयोग नहीं होगा। अतः लोग साधुक का दूसरे मान्य धार्मिक है उस धार्मिक की विवस्तु में धार्मिक (पुषुभ ग्रहण न गमनान्तर समायोग) है जिस के रहने पर भी यहां व्यवस्तु होता है।

गवीरकायपुषुभ गमनानुकृतकृतिमनः और नहीं साधुक के दूसरे धर्म के सूक्ष्मता (भर्त्र) है वह (धर्म के सूक्ष्मता में) धार्मिकता उपयुक्त है, केवल इस में सूक्ष्मता धर्मवाचक पद ग्रहण नहीं है। किसी साधुक से ग्रहण व्यवस्तु होता है उसमें गमनान्तर धार्मिक प्रयोग होने से धार्मिकता नहीं है।

- यत्रांमिद्ध गमनान्तरधार्मिक साधुक, तत्रांमिद्ध साधुक गमनान्तरधार्मिक नांसभावः। अत्वा कोटुम पु 93
जगनाथ की दृष्टि में गमन में गजगमन सादृश्य का बोध होने पर श्री पुरुष में शाब-बोध गनसादृश्य विधिक नहीं है और कोई इस से संस्करित नहीं होती। विशेषर की धारणा है कि पुरुष में शाबबोध गनसादृश्य विधिक चलने वाला ही है। इसलिए उपपत्ति होनाती है।

इस प्रसंग में यह प्रलम है कि शाबबोध के बाद होने वाले पुरुषविधिक और गनसादृश्यकारक ब्राह्मण से संबंध की निरुपित होनाती है। इसलिए जगनाथ समस्त शाबबोध में अपरीत नहीं होती चाहिए। इसका समाधान है कि गलसुद्रो न वर्य यह बाल्यन बढ़ियारुण के शाबबोध का विरोध नहीं है। शाबबोध को बाल्यन प्रतिवर्षक होना चाहिए किसी उनका शाबबोध बाल्यन ( गलसुद्रो न वर्य) का प्रतिवर्षक नहीं है। बाल्यन और शाबबोध में विश्वास-बेद है। इस प्रकार यदृच्छिक व्यवहार जन्म से संस्करित आदि कर्म की क्षमितमध्य क्षमा से कूच दूर तक परिवर्त सम्भव है, तथापि बाल्यन ( गलसुद्रो न) के रहने पर शाबबोध की अनुपत्ति का समाधान नहीं होकरता। विशेषर कीति शाबबोध से पूर्व योग्यता ब्राह्मण ( गलसुद्रो वर्य) को होना शाबबोध है इस कारण जगनाथ और विशेषर योग्यों में सामय नहीं बरकता।

जैसे मुख और नाथका में सामय न होने पर श्री उनके नेत्रो का सामय कोई को श्रद्धापूर्व है।धर्मसादृश्य के बिना धर्मसादृश्य उपजन होता है। इसी तरह गन और पुरुष में समता नहीं है किन्तु उनका गनसादृश्य विषय होता है। गन सादृश्य का अर्हतेक गन सादृश्य है न कि गन सादृश्य का अर्हतेक गन सादृश्य। गन के सादृश्य में गन सादृश्य के नियम का भागब है। अतः गनसादृश्य के सादृश्य की मानस-कपना सम्पन्न है। 'गन-सादृश्य गणीत' इस बीच में गनसादृश्य शाब है जिस में गन सादृश्य के अर्हतेक से गनसादृश्य का उपपत्ति हो जाता है। इस प्रकार उभ्य प्रतीति से सादृश्य का

1- अलकारकोक्तुम पृ 95
2- धर्मसादृश्य धर्मसादृश्यबनियमभावालु। अलकारकोक्तुम पृ 97
अन्य वक्ता में हो युक्तिसंगत है। नयि क्रिया में। 'गज इव गक्तति' मे
औपचारिक वचन का सत्ताद विवृत्त उपाय से है और वह अपने स्मारक
से उभारित साध्य का वाचक है। इस लिए भी उसका सत्ताद बनना क्रिया
में नहीं है। जगन्नाथ के शायदेश में गलसादसूक्ष्म की प्रतीति नहीं सकारती
है। इसमें केवल गलसादसूक्ष्म की हो समर्थन है। उनके शायदेश से स्वाभाव
(गलसादसूक्ष्म न वा) की अवधारणा भी सहभाग नहीं है। केवल गलसादसूक्ष्म
पुरुषस्वरूपण नहीं है।

एक वैदिक मंत्र से भी विषयस्पर्श की पुस्त क्रिया ना सकता
है। एक वासनेयक मंत्र में ब्रह्म के साथ इन्द्र की उपयोगी वीर गई है।
भौमण्ड ईस्क़ियों का अन्य इन्द्र और इन्द्र दिनों के साथ है। भौमण्ड इन्द्र
के शिक्षाद्वारस्त्र अन्य इन्द्र के साथ सदस्य का अन्य इन्द्र नहीं हो बोधित है।
प्रतिरूप के रूप में इन्द्र-सदस्यस्त्र अन्य गलसादसूक्ष्म के समकाल करने पर कुरः
के अर्थ की संगति इन्द्र के साथ नहीं बैठती। अतः गरिबग्रस्त मानि और 'गज इव
गक्तति' भाव ददो में सदस्य का अन्य तकता में हो है, क्रिया में नहीं।

लुप्तायप्सः

लुप्ता के तीन शेष है - रक्तुपता, विलुप्ता और
विलुप्ता त्रिलुप्त।

रक्तुपता - परम, उपाय और वाचक के तीन से रक्तुपता तीन प्रकार
की है। पाँच प्रकार की धर्मुपता विशेष को भी अभिमत नहीं है।

अन्यायोक्ति ने रक्तुपता अधिक विवेचन में भी धर्मुपता
मानी है।

धर्मुपता ता सबसाधस्यस्त्र दीनानि। भिन्नोिके दृष्टे। पदु -
पदुबल्लु है। जात्र हि प्रकारो गुणवचनस्य को 8/1/12 है। सदस्ये विभा विधानात।

- मृणो न भीमु कुरः गरिर्भास्तः परवत वामस्यारस्यः।
- सुभूरे संसार विनिमयान् वेष शान्त। तात्त्विमायु नुभव ।

पदुपुदा हवके । योजना शास्त्रधिकृत अपदेश पदुपुदामन्यत स उच्चरे
पदुपुदारि । न तापावरि वाक्ये वर्मलुता । कर्मधार्यवदुपुदारि 8/1/11 हीत
साधारणविधाननेत्रसदृश्यस्वरूपः । 1

किन्तु विक्रेश्राक ने इस मत का उलेख कर बढ़न किया है ।
उनकी धारणा है कि समस्तवा घर्षणूप्ता में ही पदुपुदा का अन्तर्भाषा होगा है ।
यहाँ वात्स्ययोगक साधारण घर्ष (साधूस विनिमयविधानः) से उपमानविधा
हुआ है । पदु के घर्ष का प्रयोग अपदु में है । अतः यहाँ आत्मविशेषक
(अत्यत्क्रो नाम उत्तरप्रथम उत्तरधानुष योग्य सम्बन्ध ।) समस्त है । पुवद्धमान
और अन्तर्भाषा अद्य कर्मधारय की वाते यहाँ भी विध धोना-तो है । 2

पर्वतारण है दीदित के मत के बढ़िन के भारी के साथ पदुपुदा भी
न केवल घर्ष का लोगा । किन्तु वाक्य लोग भी कहा है । वे कहते है किस्मतमधवनीकः
का साधूश्यात्मक मानना भावका क और केलट के विश्व है । विरूक्ष साधूश्य
के दूरोत्तक है नकसा वाक्य । अतः यहाँ वाक्य और घर्षों का लोग है । 3
किन्तू विरुद्ध का साधूश्य व्यक्त मानने पर भी पदुपुदा में घर्ष और वाक्य दोनों
का लोग संभव नहीं है -

द्योतकवेदः परिप्रेयपुदुपुदात्मिकमीभवान । अो को 0 पू 0 106

यदि उक्त रूप से पदुपुदा में विलुप्त ना मानी जाय तो
वेब के द्योतकवेदः (वेदयकरणमः) वस्तु में वेब के प्रयोगः में भी उपमान-
लेख मानना पड़ेगा । अतः यही ठीक है कि पदुपुदा में पुदुपुदा यह ना
अन्तर्भाषा है । पर दूसरा पदु शास्त्र सहूश्ययोगक अवस्था है । इस तरह (अो को 0 पू 0 107)
सहूश्य में एक पदुपुदा की लक्षणा है और विनिमय द्योतक है । यही मानना
चाहिए ।

1- चित्रमोहिनः पू 0 108 । अो को 0 पू 0 106 उद्धृत
2- अर्थकार क्रियावर्गः पू 0 106
3- रसगैमारापः पू 0
इस प्रकार विवेक को दूर करने में विशेष विधि नहीं है। उनका व्रत यही है कि तक्षण से दूर होने का अर्थ पद्म-व्रत है। इस तरह पद्मव्रत ही स्वयं साधुशुद्धिक होनहार है। जसे यहाँ वाक्यमूल नहीं है। विशेष ने यह साधारण अर्थ भी माना माना, किन्तु यहाँ वाक्यात्मक नहीं है। विशेष्य ने पहले तो उपमानुपत्ता को अर्थभर माना, किन्तु यहाँ यह नहीं है कि पद्मव्रत में चाहे रक्षत करन या विद्वृत्त, पर वैद्यों तक ही विभिन्न में यह समास में ही अन्तर्भूत हो जाता है। ये दोनों अतिरिक्त वैद्यों सम्पूर्ण परमाणु के प्रतीक हैं।

उपमानुपत्ता

विशेष्य के पूर्वांकत भी आलोचना ने उपमानुपत्ता को तौरतारा नहीं माना है। किन्तु विशेष्य ने व्यक्तित्व के प्रयोगों में तीव्र-तग ने उपमानुपत्ता को भी माना है।

विवेक-समूहित प्रलीनानुयायकारयुक्त। यस्तु, उपमानुपत्ता तीव्रतेंसे सम्भवते। यथा चेवङ्कः बुढ़ुकः ( अ म ० प० ० १५६ )।

श्लोकात्मक प्रकारप्रणते कनूँ ५/०३ के वातिक (कप्रत्रमण चेवचूहतो-सध्यधामामृ) से चेवङ्क और बुढ़ुकः ने कनूँ प्रत्यय होता है। इन शब्दों की व्याख्या में कैपट का व्याख्या दृढत्व है।

साधुश्रुध्द दूरोत्तकः कनूँ प्रत्ययः। यथाकृत्य यथेकृत्य तस्य वर्तन व चेवङ्कः। यथास्मात्, सन्तमानप्रभवनात्। अभृतान्नी बुढ़ुंदित्रित्र प्रस्तुतःप्रमाणद् यो दृढ़तें स बुढ़ुकः।

चेवङ्कः और बुढ़ुकः यथा है, मण्डे यहाँ उपमेय, कनूँ नयन विस्तर और चेवङ्क आदि के बाक्य का प्रयोग न होने से यहाँ उपमानुपत्ता है। यहाँ उपब्रह्म निरक्षरण सिद्ध है।

न च - यमुन्नेश्वर। मण्डे चेवङ्कादुर्मवात्। सत्यार्थवर्ष्टिभयुक्ता वेदनेनाल्कीकारात्। तथा च - अर्थ मण्डे चेवङ्कादुर्मुकताभिवाहनानिविषयः हित वाल्यम्।

__

1- महामायप्रवचन पू ० ६४५ बिब ० छाँड भारत सरकार व्यारा समापित
जारोपिततनां चैवलन साधारणंमपले।

मणि में चैवल का समान है। चैवलप्रकारक सम्भावना का विभाग है मणि। उपमा में साधारणरूपम उपयोगिता होता है। यही यहाँ उद्देश्य को समान गमन के साधारण-प्रथम की संगठित है। नितान्त साम्य में उपमा नहीं होती। उपमा में किव उपमेय को उच्च उठा कर उसे धर्म-साम्य के भाषार पर उपमान के समान बताना चाहिए है। 

यद्यपि इद्रिः में यदि धर्म की प्रसन्नता और विशेषता न हो तो उपमा नहीं हो सकती। इस लिए यहाँ चैवल का वार्षिक है। जारोपित चैवल को देवस्थ के भाषार पर समझने में सुगमता है। सूर्य वापि का तेज ब्रह्म की अनुकूलता है। ब्रह्म के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशात्मक है। 

समान स्वभाव की वस्तुओं के समान बिना प्रकृति की अनुकूलता में भी अनुकृता देखा जाता है। अनुप्रयोगात्मक च (30 सूत्र 1/3/22) की भाषा में रक्षेत्र है - कुसम-मनोभव।

न तन सूर्यो भाति न चंद्रतारकः नेमो विद्योतिन सा भाति कुतो यमोन्।

तवेष्वर बिन्नमनुभाति सर्वं तथ भासा सर्वस्य विभाति।

यद्यपि वघु और रज स्वभाव से समान नहीं है, तथापि किसी रक्षक दिशा की ओर दोनों की चन्द्र-क्षिया में समान है। तथा हुआ तोड़े का गोला और ग्नाम बिन्न-प्रभन्न है। पर इन में ने- चन्द्र-क्षिया रक्षा है। 

यदुपि वघु-क्षिया केवल अग्नि में है, फर भी यह मान सिया जाता है कि स्वभाव से चोंच में और आरोग्य से तौड़ीखड़ में दचनक्षिया है। अतः क्षिया साधु है। 

इसी प्रकार चंद्रक और मणि दोनों बिन्न-प्रभन्न प्रभु है निम्न में स्वभाव की समता नहीं है, किन्तु क्षियासाम्य है। चंद्र-क्षिया केवल मणि में है। 

पह मणि में स्वभाव से और चंद्रक में आरोग्य से है। यह क्षियासाम्य साधारणतः की है, क्योंकि धर्म गुणक्षियास्य हो होता है। यहाँ धर्मसाम्य है।

1- अलविक कौनून 300 116 2- शिल्पक निधु 2/2/10 उद्दम पाल लक्ष्यस्थ 

3- विश्वनाथ भोजपुरी यदुपि वघु-क्षिया ने निम्न और तौड़ीखड़ क्षियासाम्य कल- 

किला क्षिया-साम्य वारोदम्य। भाग्यता पुरो प्रज 152, चौ लोकस्थ।
पर्य उपयोगिता है। अतः आरोपित चैवल से ही साहारणपर्य मानी है -
आरोपित: चैवल साहारणपर्यते । यौ को पूर 116

उद्धेक्षा के सन्चारनिवारण का कारण रक्ष और भी है।
सूत्र 5/3/96 से कन्नु प्रक्रम शास्त्र के अर्थ में होता है। यद्यपि सार्वत्रिक विशिष्ट प्रश्नों का भी उद्धेक्षणवचार होता है, क्योंकि उद्धेक्षा भी सार्वत्रिकीय है। जैसे कसानी ( अलकारस्वर्गाय पूर 76 ) आदि पुद्दे में उपमा, प्रक्रम और उद्धेक्षा है। तथापि यहाँ समावना में सार्वत्रिक साधक न होने के कारण
सार्वत्रिक साहारणपर्य ही केंद्रित है। चैवल में कन्नु-प्रक्रम को सार्वत्रिक के अर्थ में न मानने पर निम्न पद में उपमा सिद्ध नहीं होगी -

नूणी ये सेवयमानाना संसारार्थवर्तित ।
ते मयःयमनध्युच्छर्चच वचनकारस्तमुः। वित्रमीरयाः पूर 95

यहाँ पर्य राधाकृष्णनाट्य उपमा गान्ध है। अपर्याप्तता में सूत्र 3/1/10 से साहारण श्रीपुत्र का उच्च के साय प्रकाश हुआ है। 'चैवल दर्श' इस अर्थ में इसे प्रकट करने 5/3/96 से कन्नु दर्श हुआ है और सूत्र 5/3/98 से कन्नु और पर्य का प्रकाश हुआ है। अतः चैवल में उद्धेक्षा नहीं है।

चैवल में अवियोगिता भी नहीं है। अय: पुलिक (अतिसा-योक्ति) में ठीक का विश्वास अर्थार्थ में नहीं है। अतः यहाँ उपमेयपद (कृताय) का माहित है। किन्तु चैवल में उपमेय ( माहित ) का प्रयोग है।

वह अवियोगिता नहीं है। कन्नु प्रक्रम के विश्वास से चैवल में उपमा नहीं मानी जाय तो 'रामक' में भी उपमा का उच्चेष्ठ होगा।

इस प्रकार तोष्ण में भी उपमानुक्षता है जो उपमा के लिए रक्ष महत्त्वपूर्ण है। वित्रमीरयाः के टोफ़कार घरानन्द में ( पूर 107 ) विशेषज्ञ के मत को व्यवस्थापन कहा है।

वाक्षिक्यता -

व्यक्तक ने प्रयोग पर आधारित वाक्षिक्यता के भेद विशेषज्ञ की भी अभिमत है।
वृत्ती कर्मचारक्षेत्र कीति स्याद विधा भयोति । । । । ।
अ) कॊट्ट पूरा २०१७
हेलेक्टर-नी-अधि-सचिवक्षेत्र-कोशितककृष्णी । दीक्षित ने । ( वि ० सी ० पूरा १०५ ) एक साधनी भेि भी मााि है । यहाँ सुन्त ३/२/७९ से भी प्रत्येक है । फिन्न उपदानशीर्ष २/२/१९ से यह भेि समापि सबकुलि में अनन्त भेडा है । सबकुलि के उपक ६ भेि दो सये अथिे भेि मानना बाइस, अन्य नहीं । सबसे को मी सबकुलि का प्रभावित मान कर भी समापि में अखांडि की समावेशन करने वाले दीक्षित के पाठिक्य पर हेलेक्टर ( वि ० कॊट्प २०१६ ) ने कुछ बोध लिया है ।

कल्याणक्षेत्र के टीकाकार जयराम द्वारार्थ ने सबकुलि के उदाहरणों में श्रीति पूर्णयोगा मानी है । ' पौर सुतीयोति ' में दो कर्म है - सुति और पौर ।' क्जातिप्रकृति की प्रकृति ( सुतीयोति ) में सुति,
'पुर्‌रोपीयोति ' में पौर आदि है । सुतीयोति कार्य में पौराणिक कस्ट का अन्य प्रयोग नहीं होता । सुति से भाववियोग भावारा प्रत्येक कस्ट कर्म का प्रयोग नहीं होता । जो कार्य सुति में भाववियोग न हो उसका पौर या अन्य प्रयोग नहीं होता, क्योंकि प्रकृति से अनन्त-युक्तिष्ठत्व का प्रयोग नहीं होता । अथुि इि पद की क्ष्यावेशा क्जाति प्रश्न की क्याति संगत है ।
किस तरह सन् प्रस्ताय में अनुसार के किना ' इकतित ' का अधस्तार होता है उसी प्रकार क्जाति की प्रश्न की अधस्तार मानिए । क्जाति के दो अर्थ हैं - अधस्तारात्मक कार्य और भेि । कार्य समापि है और विशेष नहीं । विशेष भेडि भेडि है । उस लिए ' षुिति सुतीयोति ' प्रयोग नहीं हुआ । इस प्रकार पौर सुतीयोति का मुख्येश्याम योग है -

सुतीयोति: सुतारात्मकात्मकात्मकानुनि कस्त समानतमानि ।

यहाँ हेि भावारा में प्रकृति का अन्य प्रयोग है और दूसरे में पौर का । सुति और पौर का उभार का अन्य प्रयोग होता है । सुन्त ३/१/१० से उभार ।
गारार्जन में क्रमांक प्रत्यावर्तित है। सुत आदि उपमान है और पीर आदि उपमेय। क्रमांक सादुस्थ्यता है। ये तृप्तिक्षण भी हैं। आचार साधारणत्य न है। इस प्रकार गमन ने जिन उद्यानमयी में वाचक का तेज माना तथा जयराम ने श्रीतो पूर्णप्रमाण प्रदान की है।

विशेषज्ञ ने यहाँ अपने मौलिक तकनीक से पीर सुदीयि में वाचकपुत्रा ही प्रदान की है। आर कहा गया है कि सुत से अभिनव आचार्य प्रबोध कर्मोत्तर (पीर) तक पहुँचने से अंकविभाग होता है। इस का उत्तर यह है कि पाल्यं (सुत्तमवार्ता) से कर्मोत्तर की अक्षरा अवृत्त होती है निकास विशेष आचार (साधारणत्य) से है।

प्रयमुक्तिवाद सुताविवर्त्येनिते आचारी पुणः सनादुर्गन्ता भावः
3/1/32 होते चन्दन क्रमांकस्य सुताविवर्त्यं धारावृत्त्तांगी सत्ता विशेषं तत् पीर-
कर्मकलश्वर्तमविवल्लाः। सुतिविवार्तमाने धार्यकणं कर्मेन्तरस्या वस्त्रमधाक्षिकित्वात्।

इति का अध्याय किया जाता है जिस के दो अर्थ हैं —
तदुपसृष्टित्वं और तदुपसृष्टित्वं। सुतविवार्त के उपसृष्टित्वार्थ इति से करना
उचित है तथा क्रमांक की अक्षरा कस्ता कस्ता है। इति सुतविवार्त की अपेक्षा इति के अध्याय में ही प्रमाण है।

सूत्रः 3/1/10, 11। कहा गया
है कि उपमान-वाचक पद से आचार्य में क्रमांक प्रत्यय होते हैं।
इति के अध्याय में विरोध नहीं है। क्योंकि 'सुतविवार्त' में उपमानवेदनत इति से
है तो 'क्रमांक' सादुस्थ्यता में ही सामान्य
है न कि इति के अध्याय में, तथापि सादुस्थ्यता की आवश्यक बताने के
लिए इति का अध्याय होता है। क्रमांक के इति का अर्थ सादुस्थ्य है या

1- विवाद 22-124 व्याख्याति किताब 1205 उद्धृत
2- बादलकर्मोंक पुंज 125
शधाहार रच का अर्थ-इस में विश्लेषित नहीं है, क्योंकि रच के अधारे से गव सावधान डूब होना गया तो समृद्ध में क्षणिक की शक्ति को कोशित करने में गीरच आता है। ये प्रवेश साध्यव्यापक है न कि चावक। द्विध का साध्यव्यापक है जबकि ये साध्यव्यापक है द्विध को कपना करने पर तो द्विध का साध्यव्यापक कपना हो ही गया है। क्षणिक की शक्ति कपना की अवस्था शधाहार रच की कपना रच की कपना से रच के चावक मानने में लाभ है। द्विध का अधार करने पर भी क्षणिक को वाचार साध्य जो की तो रहती है। यह अनुभागसम्मत नहीं है कि सावध रच के सका में शक्ति के समान क्षणिक की भी भेद आदि में शक्ति है। अतः क्षणिक के प्रयोग में वालक्युति का निषेध नहीं किया जा सकता। क्षणिक प्रवेश उपमानप्रण के बाद होते हैं। उसी पर यद्यपि उनके प्रश्नप्रण से अध्ययन यथा उनके चावक (द्विध) को अध्ययनप्रण माना है। उसी अध्ययन पर वे 'सुतौतियत' में श्रीती मानने के पवन में हैं। कितने प्रश्नप्रण का उत्तर अनुसवर विवरणीय है। यहाँ श्रीती भी नहीं है। चावक को तेज कर हो श्रीतीविवरणीय है। चावक का तेज होने पर श्रीती उपमा नहीं बनती। प्रावीनों का यह मत भी समीचित नहीं है कि द्विध की भावि क्षणिक में भी श्रीती वो सकती है। क्योंकि यह अवध कहा गया है कि द्वि के रहने पर ही श्रीती होती है। क्षणिक वाचारविश्व वाचार साध्यप्रण कर्त्ता है न कि उपमानप्रण। अतः 'परंसुतौतियत' में श्रीती भी नहीं है।

चध्वावस्था और विवरणके मतो में शरीरका समीक्षा -

क्षणिक प्रक्रिया के टीकाकार चध्वावस्था "परंसुतौतियत" में परम्परुप्रण मानते हैं। यहाँ रच, जल्दी और क्षणिक की तरह क्षणिक औषध्यकि-प्रवय है। सेबनिकर्मविश्व नयान में से यथा का तेज है, चावक लेन नहीं है।

1- यह की। 0 124, और 125 2- अल्लाकालक्सनः पु 0 126 उद्धृत 3- क्षणिक प्रक्रिया शलकीकर पु 0 571 4- अल्लाकालक्सनः पु 0 125 उद्धृत
बस्नूतः व्याख्याते कथायित्वे कथादिकों न च यूरस्च तद्भवतः समानता हि विश्लेषिते। व्याख्याते सदास्यार्थं हि। सूचना 3/1/10 में कथादिक बावार के बर्य ने होते हैं। बावार सापारणपर्यंत हि। व्याख्या की तरह कथ्यपुरूषों मार्ग स्थापन की। अतः कथादिक से सिन्ध हि। चन्द्र ब्रह्मयुगं में कथमुत्पत्ता हि। यहाँ सापारणपर्यंत उपात्त नहीं हि। अतः उसका बोध सबमात्र नहीं होता। दूसरी ओर नहीं ब्रह्मस्य हुआ (पुरोपथ बावार में) वहाँ ये परम्परा में गृहीत होते हैं। दर्शकीयता में अर्थ लोग नहीं माना जा सकता। यहाँ सापारणस्वयं मापित आ उपमा हुई हि। कथादि अथवार्थवर्धक हि जबकि कथादिक बावारार्थ हि। अतः दोनों की समारण के आवार पर पौरे 'साखियः' में कथमुत्ता को मानने वाले चन्द्रीवाल की कित्ता पर विशेषवर्ण ने (आठ का पृ 0 125) करारी चोट की हि।

प्रकृतोपरिपूर्वतिरीतिः सन्यासयोगी विवानस्य प्रदुःशानि पर्यायः संकीर्तानि संक्तानि प्रविष्टाति — रक्त्रत्र कर्म हुः —

व्याख्या का उद्धवत्ते में और आवार के बर्य में कथादि का अनुसार
सन्न हि। चन्द्रीवाल के अनुसारी विवानस्य को यह वैभव असीकृत हि। उनकी धारणा हि के कथादि केवल बावार में नहीं किन्तु सदृशावार में होता हि।
सूचना 3/1/10 में उपमानवद से यही चालन निकलती हि। किन्तु उक्त मान्यता में प्रभाव नहीं हि —

सदृशावारस्य कबल्ल्यार्थमेकपने प्रमाणमालनान्। नकं पृ 0 1 2 6
सूचना 3/1/10 और सूचना 3/1/11 के अनुसार उपमानार्थक पद र भावार में कथा होता हि। यह बर्य अनुसार है। वह सूचनाओं में सदृशावार का संकेत नहीं हि। सदृशावार मानने पर सूचना 3/1/10 में उपमानवद व्यय स्वर्ण होगा। और उपमानवद के सामाजिक से ये प्रभाव सदृशावार के लिए स्वर्ण नहीं हो पाते। और सदृशावार मानने पर युग का यो इलाका होगा। उपमानवद सदृशावार।

1 - साहित्यपर्य (काल) पृ 0 1 8 , और 19 तृ 0 संस्करण
उपयोगाधिकार 3/1/10 में इस प्रकार का तेज-महीना हट नहीं है। इस के प्रयोग से ही साधारणतयार (उपयोग) का निर्णय होता है। उपयोग में इस से पूर्व जो पद प्रयुक्त है। नहीं उपयोग होता है। यदि इस का आधार नहीं लिया जाय तो 'सुतीयत' में प्रकट (सुत) उपयोग ही नहीं बनेगी और उपयोग के बजाय में क्षत्रिय भी नहीं होगे। अतः इन प्रकृतियों को उपयोग निर्णय होने का नियम है।

इस प्रकार काबूहर्ष कर्म वाल्क है। यहाँ न तो शौची पूजाया है और न परम्परा। उपयोग और उपयोग के समस्त अधिकार से काबूहर्ष के बारा वाचक की उपस्थिति होती है। फिस प्रकार सूत्र 3/1/10 में उपयोगाधिकार 3/1/10 में अनेक उपयोगी का संगठ है उसी प्रकार 'बाध्य' से अनेक धम्म का संगठ है। जहाँ धम्म प्रवर्ध है वहाँ धम्म का उपयोग आवश्यक नहीं है। जैसे - ईसाई नामिका। तहत संपत्ति के लिए धम्म का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे ईसाई वाचनात्मक काला। जहाँ धम्म प्रवर्ध है वहाँ उसका उपयोग आवश्यक है। जैसे - मुसलमान तक्षु भारतीय शैव में सुवर्धित शैवोपाधिकारियों के बारा धम्मसंगठन आवश्यक है। अत रव सूत्र 3/1/10, 11 के व्याख्यान में मायाकार ने दूसरे धम्मों के राष्ट्र परम्परक उदाहरण दिखाये है। जैसे कुटीयत प्रासाद प्रसादीपित कुत्तयतु। मायोपहृत कुंतु में भी इसी प्रकार का उदाहरण -

अन्य योगयमान यही बांट नपुगान।

तत्त्वज्ञान विज्ञान पद का अर्थ नोकटू है। इस अनेक प्रमाणों और अनुभव से यह मान लिया कि केवल बाचक उपयोगाधिकार है या व्यक्ति से विशेषकारक चोप होता है। सर्वथा ही काबूहर्ष धर्मवाचक संचय होते है।

उस संख्या में पक्षक राज से विशेषकर के मत की वैधता उल्लोक है। पक्षकार्य ने क्षुद्र आदि में वाचकलुटा तो मानी है, किंतु दूसरी रीति से। जैसे नैयायिक - मत में क्षुद्र और क्षुद्र का अर्थ बाचक नहीं है। निम उदाहरण में -
यानि मे ( अनतीयत मे ) हो लक्षण के व्याारा मन्त्र के समान - यह ब्राह्म होता है। यहाँ साधृभाष्य वालक पद के उदाहरण से वाक्यलुप्त है। वेयाकरण के गत मे वशक्त के व्याारा साधृभाष्य ( प्रकृतिग्रंथविधि ) का ही अर्थ है - वशक्त वापस के साधृभाष्य के सिंह करने वाले वाहरण का कर्ता साधृभाष्य या साधृभाष्य से मुक्त मे हे किसी रूप का ब्रह्म वालक न होने से वाक्यलुप्त है

ब्रह्म मत विवेकानन्द का पूर्वप्रांगण है
प्रकृतिसंगता साधृभाष्य तिमिरःतिरिमतितिमतेनद्यु। समुदायवैक तसाधृभाष्य-प्रयोगकरणयुक्तसंकेतसंपूर्ण नये जै साधृभाष्यशिवासारायमार्गाः वाक्यलुप्तिन वेदविवेचने।

पद्मतिरल द्वारा की गारण के संगत मानने मे उन्नी के उदाहरण मे दोष आमला है। जैसे रसगगापूर मे किमा वाक्यलुप्ता का उदाहरण तीव्र

कुच्चतेषायितानमामतकायायम्य परयोगने शुरुहणे।
विनितात कीर्तिस्ते हरन्ति हरन्ति हरन्ति।

यहाँ भी नैयायिक और वेयाकरण के गत मे पर्याय और वालक का तोष है - किन्तु वाक्यलुप्ता और किमा पर्यायवाक्यलुप्ता के उदाहरण मे लक्षण मानने पर दोनो मे वालक का तोष सिंह नही हो सकता। और न अरविन्दवन्दरमुख्यः मे विचार करते हुए यह कहा जा चुका है कि अरविन्दवद द की लक्षण मानने पर अरविन्दवन्दरमुखः मे सिंहासन समागम वाक्यलुप्ता सिंह नही होती। कारण यह है कि लक्षण मानने पर साधृभाष्यवालक-पद

1- रसगगापूर 80 । 80 की 80 पूरा ।
2- 80 की 80 80 । 2 वही 80 । 27
उपाल होता है। अनेकों ( क्या ) में लक्षण से 'स्वार्थमादूर्मवाहिति
तथा ' हार्दित , हर्दित और हार्दित में लक्षण के बारे हार आदि के
साध्य केवल जोड़क है। इन दोनों में लक्षण से सादुह्यमाय्यव उपाल हो
जाता है। इस स्थिति में वायुक्तस का प्रलय नहीं उठता। ज्युस का तोष
होने पर घर्षण का व्यवहार सभी को मान्य है। अतः लक्षण से जुम्बि
उपमा सिख नहीं होती।

ज्युस-पुरस्यहुतु तोषारणश्चानुपलाल कि तत्ताप्रकृतेः
साधुस्ये तस्मात्सभुवात् ।

और कृष्ण स्थल में वायुक्त-तोष की मान्यता से विरोध
हो जाता है। अतः जैसे केवल वायुक्त के अभाव में वायुक्त-तोष है उसी तरह
केवल बालार्वाल के अभाव में बालर का तोष है।

अष्टदीपिकांसमात जीवितपा पर विदेशवर के मौलिक विचार -

अष्टदीपिकां के भ्रम में काकतालिय पद में समस्या बालकोषमान-
लुप्ता और साइ ही तीव्रता घरोपमानलुप्ता है। काकतालिमयभाष तबभणी
काकतालम् - में यह इवार्य में समस्या तबभणी 5/3/106 से विदेशवर
उपमान नहीं है। काक और दो दोनों शब्द समस्याविकय में काकतालसमयेत
क्ष्यावतः है। काकसमयेत क्ष्या काकतालक्ष्य है और तबभणी क्ष्या
तत्तत्तसमय। काक के बारे और तत्त के उद्देश्य और विचारों
का माना है - यह 'काकतालम्' का अर्थ है। देवदत्तमय का उपमान काक-
गमन है और दासूपमान दासूपमान का उपमान तत्तत्तसमय। 2 काकतालम् में उपमान
और दसू दासू का लोक है। अतः वालकंकोषमानलुप्ता तु दुहुई। और
वित्तीय इवार्य में
( काकतालिमय काकतालिमय ) श्ये प्रतिकृती 5/3/92 के अवकारस्य अवृत
5/3/106 से है। काकतालियों देवदत्तसमय वषर - में उपमान
( काकवषर ) और भार्गव ( अतिरिक्ततर तोष तन ) दोनों का तोष होने से घरोपमानलुप्ता
है। इस में तत्तत्तसमय सब है।

1- 3.0 को 50 पूर 80 को वही पूर 0.127
2- विन्दुस्मृतिकार पूर 95 सी 00 विद विद वाराणसी।
तत्त्वावेन यथा जानकर्सत्या चौरेषण वेंवत्तस्यरेति ? तोषतार्थे।
तथा च काक्त्तालोको देवतास्य वध - इवत्रतिष्ठते उपमानस्य काक्त्तालोको तेन-तत्त्व समानर्थ्यस्य च लोपो वक्त्वेन स्वेति।

विशेषवर का नम दीक्षित से इस प्रकार मित्त है -
(1) 'काक्तालम' में समस्य डी वास्तव के सम में विद्यमान है। इवार्दविधि
समस्य से और इसी में डी प्रत्यय के विधान से समस्य वाच्य है -
नाम अन्वयसकबोधयामि। समाहृदय वाच्यकविवाच्यमानला।
इवार्दविधिनासामविद्यामर ध्रुविविश्वानवलनेवार्य रघु समस्य वाच्यला।

(2) तत्त्वात्यर्थं धर्मेयमानलुप्त (काक्ता-लोकम) में भी उपमान लोप नहीं है।
तौदस्तेशियोगा में काक्ताल स्वयं की तत्त्वक वाच्य मे तत्त्व है। अन-
तदेश काक्ताल ध्रुवमण हो जाता है -

निरस्त्र यह है काक्ताल में पूज 5/3/96 से इवार्य मे
ही समस्य का विधान है। काक्ताल और काक्ता तीव्र दोनो में इवार्य है। एक इवार्य
में समस्य है और दूसरे इवार्य में प्रत्यय। नित प्रकार इवार्यविधित व्यति
सांस्यवाच्य है। उसी तरह काक्ताल में इवार्य-समस्य सांस्यवाच्य है। इवार्य
में विधित अ प्रत्यय को काक्तालीय में सांस्यवाच्य मानना और सांस्य ही उसकी
प्रवृत्त (काक्तालमू) में इवार्य में विधित समस्य को सांस्यवाच्य मानना वैद्य ही
है। इसी कोई -ी चौहों में खेता हो और यह गृहों को फूल नाम। दूसरो वाच
यह है कि समस्य को वाच्य न मानने पर इवार्य-विधित प्रत्यय भी नही होगा।
यह ल प्रत्यय प्रश्न ही तो समस्य को भी प्रश्न मान लीकर। दोनो इवार्य मे
ही विधित है।

जहाँ वाच्यीय में दीक्षित ने धर्मेयमानलुप्त मानी है।

1- विदो भीड पूर 94, अव कीडो पूर 136 उद्धृत।
2- अर्तकार-धर्मानुम पू. 137।
3- कथ्य पूजना समस्यों नाम अ प्रत्यय सांस्य। स्वतंत्रत्ववाच्य। यद्वातिय समस्यों प्रवृत्त, प्रत्ययपीर समस्यों न नाम विधित। तत्त्व ब्याप्ति कथामू। काक्तालधी वाच्यीय मानलुप्त, काक्तालधीय काक्तालमू। महाभारत पृ. 0642
विदो और मोही वनाव।
उपाय में परिषाप अवकाश का अन्तर्गत

परिषापाधीकर के उद्देश्य रूपक है। अपयदीशिष की धारणा है कि परिषाप के उद्घाटन में सामान्यपर्य का प्रयोग है। ज्ञात: उपमति व्याख्यानिक सामान्यप्रयोगे 2/1/56 के विधान में उपमित समाज नहीं है। केवल विषयम ने इतिहास की व्याख्या में विषय गर उद्घाटन (भाषाकर्ता क्षण-गम्य) की समान रह कर दुर्गम में उपमितकाल में उपमा मानी है।

1- तालमें तु या कक्षक वध दे देवदत्तव दस्युवालोकमन स्नान होत वचार। कक्षकविश्वासद्वाह। - महाभाष्य श्रेणी लोक-पुरो 642
2- क दक्षसम्वेदयोग स्त्रियाँ तक्षणा भाव। - 60 को 60 पूर्ण 135
3- उपमानविष्णुकालावकृं विषये उपमानलोह व्यवहार भाषाकार्यायम। महा भाष्या-प्रवचनकृं पूर्ण 642 मो जिन 60 मोली तस्त बना।
4- परिषाप क्षेत्रदेव विषयी विषयालाय। प्रसन्न द्वारिण दीक्षितें मदिरेक्षण। दूर रामलाल्य।
भावावधि में मबूझसकावि समस्त नहीं है। यहाँ उपमा की व्यक्ति है 
कि राज्य की। उपमति-समस्त में पूर्ववार्ष्य प्रथां है नमिक राजकीय समस्त मानने पर उत्तर व्यवहार प्रथाम हो जाता है। सामान्य समस्त में विधि की 
प्रथानिला होती है जो यहाँ अभिमत नही है। यहाँ गांवीय सम 
मान्यतापर प्रथम की विभाजन नही है। विनिमय दुर्गादेवी के ( बन को दर 161) 
के आदेश के यहाँ उपमति-समस्त का भाग निर्माण है। सामान्य समस्त 
का आदेश बांधत है। इस कारण विविधत धर्म का आदेश या उपमति-समस्त 
में विविधत धर्म का आदेश यही सुनका अर्थ है। इस अध्ययन पर दूसरे 
कारण से इस विकास में सुक, नेत्र समस्त में उपमति-समस्त ही हैं। इत्तदा जन प्रथाम 
हो जाता है। यहाँ प्रस्तुत धर्म वाक्य नही है। रमणीयतादि धर्म तक 
साम्यप्रतीक रूप से अभिमत है जिसका यहाँ प्रथाम नही है। प्रस्तुत धर्म की 
यहाँ विभाजन नही है। रमणीयतादि धर्म ही विविधत है।

इसी प्रकार रसगैयार के सामान्य परिचय के ठीक 

फौसेत्वासुक्तस्य ग्राब्ध ग्राब्धव वचः सुरायुः।
अभिमन्युसु राजाय श्रीमान्यन्च गृहम्यायतवानु। रसगैयार पूर 330।

उपमति-समस्त वचः सुरायुः में भी उपमति-समस्त हो जाता है। यहाँ भी सामान्यधर्म का 
आदेश है। ग्राब्ध ग्राब्धव यह अनुमत नही है। और सामान्यधर्म परिचय के 
में अपने ऐसीही विभाजनादानी 
मगहायण भ्रम विविधतादि विशेष नही है।
परिवर्तन स्वर्य तत्रितिनयात्उरिनियोः। 
सम्मतासत्त्व शृरिनवमधस्वतिरयातु। रसगैयार पूर 330。

भी विवेकादि ( बन को दर 163 ) ने शृणुवासलकार का अर्थ 
हो सर्व नवमधलकार न मानकर उपमति-समस्त ( हरे नवमधल इव )
माना है। तम्भरण साम्यधर्म नही है। कारण यह है कि धर्मन्तर के 
सादुक्षिष्ठ ये हो तम्भरण विभेद है, अनुबाद है। दूसरे धर्म के अर्थ है।

1- व्यक्तिविषयकमान्यमानिनि पूर 958।
इस कारण सामान्य धर्म के आदेश में इसकी विवशता नही है। दूसरे बुद्धि से भी
तपाईहरु हो सकता है। अतः तमाशाजन की उपयोग में भेदकरण से वैषयीक
सामान्यधर्म का निर्वाचन हो जाता है। पिण्डितराजकृत व्यविधत्वपरिवार के
उदाहरण

वहीनवन्व तस्तानामने ज्योतिरावती वाचि शुचिप्रियानन्दने।
रघुचित रूपा शित्यशाली माध्म न कधी महीतने स्थायु।
रघुरामचर पूर्ण 330

की व्यवस्था या भी विषेषत: सहमत नही है क्योंकि राज्य
आर्थिकमण्डल है और गुर्जर राजस्वमहिमा।
योगा और रूपा के समान न होने पर
भी क्षति नही है। जेस से जेस में मंदिर के सम्बन्ध का विचारण है। अतः
शुचिप्रियानन्दने योगा के रूप में यही स्वरुक्त हो सम्भव है।

तत्र केन्द्रपर वाचि न स्वति सूक्ति विशेषत्वमपरीक्षणां रामानुजनकृतस्ती।
क्षण-पक्षस्य ततोत्साहकक्षणायनाध्यक्ष ज्ञातात्माक्षर रुपपरितलिर्मूलः (रघुरामचर-
पूर्ण 331)। तद्भस्तु। योगाभिषेकः समामझते सतीति वर्णित गुजर-
पक्षराजप्रियानन्दन्योगीत स्वपक्षविपक्ष तपस्वितातु। (सर्वकारकोठु मूर्ण 163)

विद्याधिकार के अनुसार निर्माण्य ने परिशिष्टापनने के अनुसार निम्नपद्धः

नरसिंह महीरत के वर्ग वर्णन।
अतः राजानगरमय यही यह विपक्षकर। (विशिष्ट 334)
(रघुरामचर पूर्ण 337)

महत्त्व
इस परिशिष्टापनने का अर्थ करते हुए उनका स्वभाव है
कि राजकीय से उपस्थित नृप और वन दोनों रच है। राजनू स्त्री उपायकर
है। स्वरूप से दोनों की उपस्थिति है। दोनों का सम्बन्ध है परम्परागत
में से मानने पर परिशिष्टापनने सिद्ध नही होती। यहाँ परिशिष्ट वाचि है।
पिण्डितराज ने पावनस्मरस्ति परिशिष्टापनने के लिए समर्थ्य का लिखा है -
पाया बलमते हैं वा सृजामुक्तिविन्यासः
पर्यावरण समासाल देव शान्तिविनयसः। रघुरामचर पूर्ण 339

यहाँ परिशिष्ट का प्रभाव है - में प्रभाव और स्त्री दोनों का असमान्य सम्बन्ध होने
से परिशिष्टापनने मानना संगत नही है।
अनन्य

अनन्य में रूक हो वशु उपमेय और उपमान होती है।

वामन (काव्यालंकारसूत्र 4/3/14) की भविष्य ममत, सम्प्रदाय और विश्वनाथ की परम्पराओं में केवल इसी तत्त्व का उल्लेख है, किन्तु भामद और उद्धव ने अपनी परम्पराओं में असाध्यता यथा इसके समानार्थ अन्य का प्रयोग भी किया है। विवेकवार के रूप में उपमानायुक्त के विषय में विवेकवार के निषेध का सन्नियेश भी किया है -

रूक रश्मीकथिते स्थाययज्जितमेयते।
अन्तुदभूरी निषेधः तन्मल्यक्तिज्ञानम: ॥ गौ कौ ॥ १ ।६८

यहाँ सुदृश्यात के निषेध में ही चमकार अभूत है। अतः परम्परामें इसका उल्लेख आवश्यक है। अपने निषेध के कहा है कि अपने में अपना साबुध न हो सकने से उपमानके व्यावहारिक है। यह मत संगत नहीं है। क्योंकि कार्यान्वयन से अपने में अपना साबुध भी संभव है। अतः काम्रे उपमान की व्यावहारिक हो रखना घात है। इसीलिए भामद ने कहा भी है -

यत्र तेनेव तथा साबुधमानोमेयता।
असाबुधक्ष्यकतामानोमायतातुं ॥ काव्यालंकार 3/45

विवेकवार के सुदृश्यात के निषेध का भाव यह है कि मुख के सम्मन जन्य कोई वशु नहीं है। के बसे अनुभव करता है।

अतः स्मार्यज्ञेयकृत्तिज्ञेयकृत्तिज्ञेय संप्रभुनारायण: ॥ कौ ॥ १ ।१७२

अनन्य में रूक और ग्रह का प्रयोग है जिसका बध्य बेद है और चन्द्र का भेद चन्द्र नहीं है। अतः बाजों, रूक दूसरों से टकराती है। अतः इस्तम्भ में अनन्य सेरण होने से संगत है, किन्तु अनन्य तथाकथा अनुभवों में ही संभव नहीं है। अतः अनन्य में भेदकाने होने से उपमा ही होनी चाहिए। इस प्रकार के भेद में उपमा होती है न कि अनन्य। भिन्नभिन्न कला में उपमा
दोनों के कारण दो चेहरों को भिन्न-भिन्न प्रान्त मानने में कोई व्यर्थता नहीं हैः।

किन्तु अनन्य के कालकृत में उपमा मानने पर अन्यासुः की निर्देशित वापित होता है। इसलिए अनन्य की परिभाषा में अन्यासुः निपेद्युः का सन्निपात है। अनन्य का फल साहाय्यार्थ या अनौपचार्य है। अन्यासुः निपेद्य या उपमानान्तरबद्ध वापित हो जाता तो अनन्य का उद्देश्य हो जाता है।

बसतूः किसी भी प्राकार से उपमा और अनन्य का निपेद्य नदी होता।
यदि किसी से इसका में वन सकता है तो वह है शाव्वेद्य। यदि अनन्य में शी निपेद्य माना जाता तो 'चन्द्र इव चन्द्र' का वापित होगा - रत्नकालिनचन्द्रको -
तोनचन्द्राः। अनन्य में यदि इसका नदी नहीं है। यहाँ भी उपमा ही है - रत्नकालिन -
चन्द्रकालिनचन्द्रपरावर्त्य। किन्तु निष्कुर्मित्वस्वयःकोऽः
में अनन्य ही गात्रना चाहिर। मेमान्य में उपमा होती है। अनन्य का उद्देश्य मेमान्य में सृजन नहीं है। ततो शाव्वेद्य का में ही रोकोऽ का मेमान्य है। चित्रमोच्याः की सुंदा दीक्षा में अख्यत्ता ने बिग्वसार के ततो को प्रामाण मानकर उद्देश्य विकास है।

अन्नेवते। यथा रत्नकालिनचन्द्रः तत्कालिन चर्यावर्त विकास होते रूपे उपमालमेव। चन्द्रकालिनचन्द्रवर्तस्य विकास होते रूपे लनन्य प्रथ। रसलोक्य भेदमाने अस्वयम्। शाव्वेद्यवेदवै ततो भेदमान्।

कुछ राष्ट्र और समाधान

जैसे रूप उत्तर: हो ६० भु १/३/१४ की व्याख्या में कहा गया परिमाण है जिन्हें परिभाषा वह नहीं प्राप्त कर सकता है। उत्तर में परिभाषा वह ग्राह्य नहीं है। अवित्ता और अनवित्त के में शी ग्राह्य और हृदयवित्त जाता है। जाता का भेदारेवर करने उपमालमेयमान्य का सम्बन्ध विकास है। इसका

1) चित्रमोच्याः २० १५२ सम्बंध दक्षिणवाड़ी गुजरात।
2) शाक्तमानाः २० ३२४ प्रायवेद्यां चौथां सौकृत सौरिज़।
प्रकार 'चन्द्र इब चन्द्रः' में यद्यपि उपमा और उपमेय का अभेद है, तथापि किवतमेय को लेकर उपमा ही सक्ती है। किन्तु विष्णु नामक में यह मत अस्वीकृत रहा है। भाषा के पूर्ववर्त के बारार भर भेदारोप से उपमा का ही अभिव्यक्त जान पडता है जबकि अनुवाद में भेदारोपणात्मक उपमानहीं हो सकती, क्योंकि यहाँ भेद-विवक्षा नहीं है। यदि उपमिका भेद से सर्वत्र उपमा हो तो अनुवाद का उद्देश्य होगा। दूसरे बात यह है कि तेन तुल्य क्रिया चेतनतः 5/1115 की ब्याख्या में रक ही वस्तु का उपमानोद्यमवाह अन्य नहीं है। इत्यादि विष्णु जन्मवृत्ति। गौरिव गौरी। जिस हेतु से रक गौरी है उसी हेतु से दूसरी भी। यदि कही जात उपमानोद्यम की रक्ता में केयट के मत से निरूप पडता है, क्योंकि केयट ने रक ही वस्तु का उपमानोद्यमवाह नहीं माना। इसका है यह कि भेदविवक्षा में केयट की मौत विवेकज्ञ ( 1950 टीका में 170) की मौत उपमा माना है। किन्तु जहाँ उपमानन्तर की आयु भी हो की का ताल्पर्व है कहाँ अनुवाद ही होता है। कितिमागार्यारी के निरूप ही अनुवाद के प्रतिपादन में ग्राम्य है। 2 केयट की उक्ति से ( उपमानोद्यमवाह नामी) से ग्राम्य है कि वहाँ सार्थक का पर्यक्ष न होता है। यहाँ रक ही वस्तु के उपमानोद्यमवाह की रक्ता शास्त्रवाष्णित है। जहाँ उपमा और उपमेय रक ही एक है कि उपमानोद्यमवाह ग्राम्य हो जाता है। उप - 
अध्यात्मिक समान्यचर्चा: 2/ 1/55 सुत्र कीव्याख्या में भावकार का यही विश्वास।

1. तत्र पुष्पवस्त्र देह ग्राम्यवस्त्र वस्त्रवस्त्र प्राणि कामवस्त्र वस्त्र निवर्त्यानु -
भवनीय भवनीय निवर्त्यानु गतये। यद्यपि नामभिर रक्त मूलकारी -
रक्तबद्धामानिकै तज्जन्ति लोकवेदमानिकै रक्तभुतकारीनिवर्त्यानु गतये।
शाक्य वाष 326 प्रारम्भ।

2. नामसंज्ञायनान्याश्च - विष्णु जन्म तुल्य शायत्त्येव रक्तम्, यथा हैरिव गौरिव।
नेनाहुको कीस्तेद्वस्त्रेऽभित उपमानोद्यमवाह: महाभाषार्को पुरुष 530 विद्वि
अध्यात्मिक समान्यचर्चा: भारत सरकार संपादित।

उक्त गौरिवो में रक्त के उपमानोद्यमवाह: है, किन्तु विवेकज्ञ (1950 171) क्रियाकालीन चरणन्तर ने रक्त उपमानोद्यमवाह: पाठ किया है।
यहाँ उपमनोपयोग की स्थापत्य भी भेद की संगुली कल्पना है।

शारीरिक भेद से अनन्य में उपभोक्ता पर अनन्य का उल्लेख नहीं होता, क्योंकि अनन्य में उपमनोपयोगी की सौगति के लिए अवश्यक प्रति नहीं होता। अनन्य में बन्ध के समान चन्द्र नहीं हो सकता। यह चन्द्र बालक है। उस समय चन्द्र की चन्द्र के समान वत्तनों की प्रकृति से जो उत्पन्न होता है वह शाब्दिक है। किन्तु उपमा में वही वश्ववाच्य है। इतना का धार्मिक शास्त्र है। नियंत्रक ने अनन्य में उत्पादन के द्वा के दो वर्ण माने है - वृक्षिका और भेद। अनन्य का शास्त्रिक (अनन्य अनन्य संख्या) अनुमोदित है। यह शाब्द-वाच्य हो उपमा से अनन्य का भेद भी है। यह प्राय: से चन्द्र में चन्द्र का भेद भी है।

तप्याक्षरोतिं भेद-शेषार्थ चन्द्राक्षरोतिपरमेश्वरः यो निपु 17।

नियंत्रक यह कि नहीं उपभोक्ता और उपमेय सक हो है चन्द्र उपभोक्ता और अनन्य दोनों होते है। यदि भेदवाच्य से भेदविव्याह में तो उपभोक्ता हो गया। यह भेदवाच्य देश या काल की उपास्क ये युक्त रहेगा। रेखा ही स्थान में यदि कवि न की उपमनान्तर की निर्धारित श्रेणी रहे तब अनन्य हो गया उस प्रकार उपमन और उपमेय के रेखा में उपभोक्ता और अनन्य दोनों होते है। कविता या शाब्द-वाच्य ही इन दोनों के भेद है। और इसी प्रकार से भेद नहीं बनता।

अनन्य में असम का अन्तत्व

अनन्य की असम में अन्तमूल करने के लिए कुछ तरह दिये गए है। अनन्य में कवि अपने में अपना साध्वत्त्व दूतहृदता है जबकि असम में उपमानोपयोग मुद्राति है।

संबंधितमानोपयोगोपकालकार।र-सारस्वत्पूर 278।

अपने में यह चमकावा देने के लिए यह अलंकार अन्योपयोग की व्याख्या ही का उपज्ञात है। अनन्य में, इसी प्रकार का चमकावा है। इससे उपमेय का उच्चतांक घूमता है। उपमानोपयोग ही उपमेय की उच्चता का कारण है। उपमानोपयोग असम -स्थाया है। इससे अनन्य भिन्न नहीं है। क्योंकि अनन्य में उपमानान्तर व्याख्या है।

कोयव्य योग्य। हक्क। कथमनुमन गौरते। मानुष। नमान्वितिशा नायक बयोते -

इति निषिद्ध है। तलाम्येन यज्ञाक्षरोपण: तदपभोक्ते। गाविश्व गण्य इति

गो निशुल्लक गाविश्व: इति। कथमत्तत्तत्त्वं हृदया यस्य गण्यस्य निशिद्धोः सूति

गाविश्व बयोते; कथमान्य पूरो 397 कथनाने

तत्त्व संक्षरण
का व्यंग भी अपने दृष्टि अपने में हो सामना रहकर व्यंग सिध्द हो जाता है।

किन्तु इन तीनों से अनन्य में असम ही अन्तर्भूत होता है न कि असम मे अनन्य। अनन्य में उपमानन्यवाच्चुन्ति दोभावाफक नहीं है किन्तु विकल्पित नहीं है। यहीं यहाँ व्यंग है। व्यंग की अपेक्षा व्यंग में अधिक चमकाव

सर्वसमात है। और तीनों काली में उपमानन्यविशेष असमातुक है। तथा नन्दिकी उपमानन्यविशेष तो अनन्य में व्यंग है। जब प्रकार असम न्यूनतृत्व-त है अनन्य का का-से अर्थ अधिक है। अतः अनन्य में ही असम का अन्तर्भूत होता है।

उपमेयोपमा

उपमेयोपमा में (अकोष पू ० २५५) एक वस्तु का अन्य वस्तु से साधुक विद्धनकर पुनः उसी वस्तु का प्रायः वस्तु से साधुक का वर्ण होता है।

अस्मानीक्षते तुर्तीमृत्त्वक्षेत्र को उपमेयोपमा का विश्लेष

तल माना है। वो वस्तुओं को परस्पर साधुक विद्धन का प्रयोग यह है कि तीनों अगस्त इसके समान नहीं है। इसके बिना धारणा में शक्तियत वोष नहीं जोता है।

परस्परोपमा में भी दो वस्तुओं का परस्पर साधुक रहता है। इसी रजोभा आदि में परस्परोपमा है। दोषक दक्षता उक्त गत विशेषकर का अभिभाषण नहीं है। वे यहाँ उपमेयोपमा मानते है। यहाँ है। उपमान है। भूकंतमेवेश्वर अन्य वाणी भूतमूल। दोषते उपमान एक व्यंग से जुड़ी है। इसी से उपमेयोपमा उभर बाहुः उपमेयोपमा के लक्षण में ती प्रवर्ती परत| का अथ उपमान है। उपमे उपमान का विश्लेष नहीं। अतः -

पूर्वोपमाय साधुकप्रभावं विद्धनिक रास्मेयोपमा तार्किक उपमेयोपमा

लिम्बीयोपमाय -

1- अन्तर्वरकलय टीफा ४० २५५ १७४
2- रजोभा स्थायानेन्तुरियमृत्र स्थायानेन्तुरियमृत्र

भूकंतमेवेश्वर अन्य वाणी भूतमूल। ४० ० ४३

भूतसे व्यंग का दोष गान से भूत का साधुक विभेद है। परस्पर साधुक का यह प्रयोग नहीं है कि गान और भूत के समान अन्य वस्तु नहीं है।

यहाँ साधारण व्यंग रजस है जिसके व्यंग भूत से गात का साधुक विद्धन बनाए। गान के और वाण के विद्धनप्रभाव से व्यंग और भूत का साधुक विभेद का पर्यस्त यूर्तिनेमण व्यंग बुक्कोड में नहीं होता। यदि उपमेयोपमा में तुर्तीमृत्त्वक्षेत्र का समाय नहीं किया जाय तो उक्त पद्य में उपमेयोपमा चढ़त होता है।
पक्षतर्फ़ भी दीक्षित के समान इस बात से सहमत है कि रजोमियः
शादि में उपमानन्तर का प्रसंग नहीं प्रतीत होता। दोनों उपमानों में 
थर्भ मिन्नत है। पहली उपमा प्रशांसा अनुगामी चरूँ के सिंच है और दूसरी विचार-
प्रतिविश्वासध्य था और गलत धर्म से। दोनों में स्वः धर्म से ही अनेक उपमान 
का निवारण हो सकता है। विशेषतः की धारणा जगन्धर से मिन्नत मिलती है। उनका 
अभिप्रय यह है कि यहाँ दोनों उपमानो में स्वः धर्म है। इस लिए अन्य उपमान 
का निवारण हो जाता है। रजसू और मेघुत्त्व गद्यो का विम्प्रितविश्वास है।
'प्रर्णिक' पद का अर्थ दोनों उपमानो में करते मेघसदृशयविषय रजसू और 
गद्यो का विम्प्रितविश्वास स्वराज किया जाता तो दोनों में धर्म की रक्ता ज्यों की लोग 
रहती है। विम्प्रितविश्वास की विवास में कोई बाधा नहीं है।

यल्लि विम्प्रितविश्वास - रसगांधराणय: - नायेओमानन्तरतिरस्कर: प्रतिनिधि,
उपमोरकर्मकलातु, आदुशमायु अनुगामिनिधियोयव्यलातु, कल्याणावाच विम्प्रित-
विम्प्रितविश्वासनामकोयव्यलातु। राजसू मेघुत्त्वगद्यानी व विम्प्रितविश्वास-
विवासानी प्राकृतिकावाकालातु।

यहाँ स्वः प्रश्न उठता है कि विम्प्रितविश्वास दो मिन्नत धर्मों
में होता है दोनों में परस्पर सादृश्य से दोनों अद्वस्तमर रहते है। उनका दो वार 
उपमान होता है। विम्प्रितविश्वास से प्रर्णिक मानते पर पहली उपमा में 
रजसू विच्छ मौर और धर्म प्रतिविश्वास। कारण यह है कि उपमेय-वृत्तधर्म ही 
विच्छ और उपमानकृत�र्म प्रतिविशः होता है। इस प्रकार विम्प्रितविश्वासनाधर्म 
में विपर्यय वालक है। इसका समाधान यह है कि अभेद सादृश्य से रजसू और धर्म 
में धर्म का विरोध नहीं है। इस में यदि विदेश माने तो विम्प्रितविश्वासनाधर्म 
धर्म से सिंच होने वाली उपमेयकस्था का विलय हो जाता। अतः उपमेयकस्था में 
उपमान और उपमेय के रेखा के साथ ही साधा साधारणधर्म को भी स्वः ही मानसा चाहिए।

1- रसगांधराण पृ 0 268 काल्याणक 12
2- बस्तुपोषीक-परस्परसादृश्य विम्प्रितविश्वासकस्थानों विम्प्रितविश्वास-
मानः। कल्याणक पृ 0 4 बमाड़ संख्यार 1942
उद्धेश्य

उद्धेश्य में उपमेय और उपमान की प्रतीति होती है निम्न उपमान की प्रतीति उलट होती है। उद्धेश्य की व्यस्तता से यह समझाता है -
उलटा प्रकृतिकोशमानसे ब्राह्मण। मौर्य पूर्व 18।

उपमेय में उलट उपमानकोटिक साध सुझाव है। क्योंकि सम्भावन का अर्थ उलटकोटिक सन्देह है। सीमाना को सन्देह का प्रकार कहना उचित है। क्योंकि सन्देहतौल में अस्तित्वके चरण के सिरे कोटि का विश्लेष उलट है। संदेहतौल में तुल्यकोटि का संस्करण होता है। अतः उलट उपमानकोटिक प्रकृतिविज्ञक सम्भावन उद्देश्य है। यहाँ सीमानाय प्राथम ब्राह्मण नहीं है। वर्षज्ञाते -

वहीं स्मरण करता है कि भ्रमण प्रती का युक्ति वायुविक्त धारणा।

प्रेयस्तव प्रयोगोतो युक्तिवाद विद्यार्थिविषयतामानवः। अङ्गीक (खण्)।

इस में सविदेशायणी अनुक्रम प्रकृत है वत्तिगृहों और यथिगृहों तित्वक भार भाषितों से अनुक्रम के खास को सम्भावना की गई है।

इस का रूप प्रथिक प्रजाति है -

लिखिते तमोवाणी वर्तलिचालन नमः।

विसेकार ने यह प्रत्येक उठाया है कि यहाँ कुछ अलग-अलग उपमा मानते हैं। क्योंकि महाद्वीप के अर्थ को बोधित करने में इस वायु नहीं है।
क्ष्याग्रकार के टीकाकार जवाममुद्दार्ची ने अपना समापन दिया है। वे कहते हैं कि उपमा ने इस के साध नियतत्त्व का विधान है जबकि यहाँ इस के साध तित्व का समापत नहीं है। कालिग्राहक अनुसार प्रायिकदिकार्यों का ही प्रमुख होता है।
संक्षेप नौ नहीं है। यद्यपि यथिगृहित (आधारावधारित खण्डोत्तर से) में आधार का समापत है तथापि यहाँ देखो आधार नहीं है। अतः लिखिते

1 - सम्भावना के साथ इस अनुक्रम के बेंड भी प्राहीत हुए है -

सम्भाव्यत हत यदा सामग्रित्योगिता यदुप्रेमयम्।
तामुष्टिकामद्वारद्वार हेल्दारिकन्यस्मातः। गौ कौ 130 पूर्व 182।
क्षेत्रात्मोसागर का उद्देश्य सीमित - 2 - सेतुकाय (खण्डा) मौर्य पूर्व 182 - उत्प्रेक्षा -
मे इवार्य साधुसत्र के अभाव में उपमान नहीं है।

यह समाधान प्रेरित नहीं है। यदि इव के साथ समाधा को निःशास्त्र माना जाय तो इव की साधारणतः मानने पर यहाँ भी समाधा नहीं होगी। इस में कोई प्रमाण नहीं है कि साधुसत्र के ही इव के साथ समाधा होता है और समाधान में नहीं। इव के साथ निःशास्त्र समाधा का नियम नहीं है। सह सुधा 2/1/4 के वार्तिकाव्य विवक्षालेख पूर्वप्रकृतिस्वरूपी में समाधा का उलेख नहीं है। भाव्यकार ने साधुसत्र समाधा की चर्चा की है -

इवेन सह समाधा विवक्षा: पूर्वप्रकृतिस्वरूपी च।

यहाँ शुद्ध 2/1/3,4 की अनुवाद से प्राप्त हुए समाधा की चर्चा है। इसलिए नियमस्वरूप भी कहते हैं -

इवेन समाधा इव साधुसत्र है। अलावकारकौस्तुम पूरे 183

इव के साथ समाधा के निःशास्त्रिक के अंतर्गत सट बताता और समाधान के साथ समाधा का प्रस्तुत हो नहीं होता। यहाँ समाधान प्राप्त है यहाँ निःशास्त्र समाधा की बताता है। 'वहाँ तमाशा' में इव का प्रयोग समाधा के विभा है। यह माना जाय तो साधुसत्र में भी समाधा का प्रस्तुत न होने से समाधा के विभा ही इव-प्रकार के प्रयोग में उपमा बाह्य का समाधा है। अतः उपमा हो देनी चाहिए थी। किंतु उपमानाधीनक को ही उपमानाधीनक मानने से इसका समाधान होता है।

उपमानाधीनकयोगमानाधीनकलातु। अथ यो पूरे 183

यहाँ उपमा न होने से यहाँ उपमा नहीं हो सकती। उपमा बोध हो सकता है? इवेन की कतार अन्वरार उपमा नहीं है। यद्यपि व्हालिका तथा नीतितिथास के कतार का उपस्तुत है, तथापि व्याकरण में वाल्यास की कतार का ही प्राप्त है कतार का नहीं। कतार में कतार विशेषण है और कती विशेषण। यहाँ कतार (अन्वरार) कतार का उपस्तुर करता है। अतः व्याकरण कतार।

1- महामाय कृ 378 कौरंतार 280 संस्करण
का इतिहास ( साहित्य ) में अन्य नहीं बनता। क्रियान्तर की अपेक्षा से तित्ति क्रिया ही प्राप्त है। अतः प्रतिव्यूह चरित्र और पशुपी किताब में कर्तृविषय ( पाला ) और कर्म दात ( थान ) का भाग भवन और ददू से है। भैशाकुंपसे में साधना-प्रथम या तुमु गो क्रियाकर्ता का अन्य तित्ति नहीं है। यहाँ कर्ता उपमान नहीं है। क्योंकि वाल्ल्य में भी विशेषण नहीं बन सकता। क्रियासन्तान कर्ता का अन्य अन्यत्र समान नहीं है। किसी जो विशेषण होगा उसी के साथ उसका अन्य होगा। अतः नहीं करके क्रिया का क़ैसा बनना जाता है और क्रिया के साधन्य की प्रतीति कराई जाती है वहाँ कर्ता उपमान नहीं होता। यदि कर्ता उपमान हो, किन्तु क्रिया पद में गौम हो जाता तो वह अपनी क्रिया की ही विशेषण में भाग रहता है। तजावह कार्य करने में साधन। होता।

कर्ता यदूपुराणम प्रख्यातो यथा श्रवणे।
साहित्यसाधनन्यानि नवस्तथा अध्येततुमु ॥ कथ्यवर्ष २/२३०

प्रतिव्यूह यह है कि पुष्करिणी गव्य में सत्तामाक का विशेषण पृथ्वी क्षेत्र है। क्रियासन्तान कर्ता में अन्यायात्मक है। यहाँ सत्तामाक का अन्य भूमिका और साधना से साथ रहकर होता है। वर्तमान सब अन्य का बाक्य है। इसी प्रकार भवना और साधना समझों में कर्ता का अन्य रहकर होता है। यद्यपि प्रकाश को कहानीय परमार्थ है। किन्तु ऊपर उल्लिख्त के भी 'वहाँतव तमः' का यह अर्थ समय नहीं है - वह अवस्थापुरुष तमः।

क्योंकि कर्ता में पराक्ष विशेषण नहीं होता। यहाँ मन तेने पर क्रिया की प्रधानता शासी में पड़ जाता है। क्या यहाँ समस्त और कर्ता क्रिया में भागायत्त कर्ता का अन्य है। या कर्तृभासाया हो। इसका अर्थ है कि क्रिया प्राप्त हो। इसमें पहले प्रसन्न का समाधान यह है कि वह भाव वहो हो तम का अन्य है। क्रिया भवन का प्रतीत है न कि साधन। से है। वह अवस्था को न मानने का कारण यह है कि धार्मिक प्रकृति उपमान अन्य है। जहाँ साधन भ्रष्ट नहीं है वहाँ तम का प्रवण शास्त्र है। इसलिए धार्मिक और धर्माचार्य स्थिरता करने पर भी 'वहाँतर अवस्था' तथ्यात्मक भूतात्मय नहीं पुरूषविव रोकितमनस्चार्याः के विना साधन उल्लिख्त नहीं होता।

इस प्रकार हैं। वहाँतव तमः में कर्ता (साधन) उपमान नहीं है। उसी तरह वह भाव भी उपमान नहीं है। क्योंकि तत्प्रति के साथ उपमान नहीं होता।
न दे तिंदनेश्वराणमेवायतः - महामाया। इस पर कायात का व्याख्या उल्लेख है -
तिंदनेश्वरायतः। कृपया साधुकथमाल्लाधिनन्दनात्वाविदं तत्तति
पराम्बिविषयकपुरुषस्चविन्यायसेवेऽति पराम्बिविषयायति। 1.
अनुच्छेद 2
तिन्तु उपमान के साथ उपमान का बोध नहीं होता, क्योंकि होने
से कृपया का स्वाभाव साध है जब कि उपमान सिध्द होता है। 2
हालांकि वहाँ की माया में वह तूफानिक या प्रेक्षित है। 3 वल्त: नहीं, उपमान शोध या अप्रेक्षित होता
है वहाँ उद्देश्य ही है न कि उपमा -
यज्ञ तुपमानतापकमाष्टिग्मां मात्मग्राहिस्मू, तनो भैरव श्रो की पुरे 10

तिंदनार्थ को उपमान न मानने का एक कारण यह भी है। नृणार्थ
को उपमा पूर्ण केमात होती है। कृपया में नृणार्थ समस्या होता है। किसी को नृणार्थ माना
जाय तभी उपमा होगी। जैसे -

वेणैव वेणुब्रह्म एस: पत्तिनार्यां विवेदक ।
ब्रह्मी तथा सामान्यत्वज्ञानियों न विवेद ।। वास्तविकता

यहाँ वेणुपतन और वल्पस्वागत को कृपया है। ब्रह्म एवं पत्तिनार्थां
पूर्ण है। नृणार्थ नहीं। वेणैव में रच दिनांक जनकता उपमा है। इससे एक का उर्बन
और दूसरे का अंकर्ण नहीं है। भिन्नबाधाय सियार्थों में साधारण्यम नहीं र उत्ता
दोनों वार्ता है। इन दोनों समान चित्रार्थों में सदृश्य नहीं है। अतः यहाँ कोई
उपमान नहीं होता। इसी विवेचना के अनुसार में वहाँ तथा अधि पद्ध की वहन,
नेत्र और वार्ता अधि भिन्न। रिपर कृपया में भी सदृश्य नहीं है और न ही उपमा
है। अतः उपमान के विषय में विवेचने के उद्देश्य उपमा नहीं, किंतु उद्देश्य
होता है।

उद्देश्य में इस के श्रमणार्थ उपमानमान्त्र नहीं होनी चाहिए क्योंकि -
केमास्यानार्थाणितिहितशर्योऽहेतु जय्यते ।
नेनार्थ तिंदनेश्वरायतिकृष्यात्वाभिषित्मू। कव्यावरी
तिन्तु के समीक्ष का इक्क रूप मानवस्तव करता है न भी सदृश्याधाक।

1- महामायप्रथम पृ 0 27 विष 0 अद्व भारत सरकार के दूरा समाधित
2- श्रीमन्नेश्वरायपृथभागेन्द्रितविवेदक ।
तिंदत्तखलतु साधुकथापुरुषाने न नय्यते । काल 0 पृ 0 587 उद्धृत
3- उपमानोपमायति च नोकर तरणेन लोकसिद्धल्व। गायकादेशत्त्व पृ 0 11
'ढ़ाक्षणवधीते योनिः औषधनागात्मक अध्ययन पद्धति है तथापि तिथित का उपयोग नहीं है। बत: वात्तिकायां साधृः में अध्ययन का अन्य अत्यावश्यक नहीं है। और तिथित का (अध्ययनस्थिति) में शास्त्र अध्ययन का अन्य अत्यावश्यक नहीं है। किन्तु राजस्थानी गायत्रि निः सादृः आरोपी से फर्क की आपातकालीन दूर रोगों का माफी को न हो नहीं है। अन्ततः एवं ताल्लुक नहीं है। अत: इत्यादि अवश्यक नहीं है। अत: अवस्था, ताल्लुक का अन्य अवस्था पारस्परिक होता है। और अन्य अवस्था का अन्य अवस्था होता है। तेहें अद्वितीय अवस्था के साध्य है। अर्थात् शास्त्र अवस्था, तथा इनका प्रयोग अध्याय अवस्था है। अर्थात् शास्त्र अवस्था का अन्य अवस्था पारस्परिक होता है। अर्थात् शास्त्र अवस्था का अन्य अवस्था होता है। तेहें अद्वितीय अवस्था के साध्य है। अर्थात् शास्त्र अवस्था का अन्य अवस्था होता है। अर्थात् शास्त्र अवस्था का अन्य अवस्था होता है। अर्थात् शास्त्र अवस्था का अन्य अवस्था होता है।

यदानुगमानसीयोऽऽ तलकः शिष्यमुखः
तदेशेव देनेवालः सादृः तलकः
यथा पूर्वयोऽऽ तलकायेश कक्षाक्रिया
तदेशेवेष देनेवालः सादृः तलकः

बहुत तथा में शक्ति और तक्षण दो दृष्टियाँ है। यहाँ ब्रह्म की बहनेश्वर शक्ति है और अर्थात् व्यापन में तक्षण। अर्थात् साधृः में चाँदन 1 महीने वठन 2 हो गये सकने से मुक्ति का व्यापन है। अर्थात् तक्षण दो दृष्टि है। अर्थात् तक्षण का तक्षण 3 व्यापन है।

(1) ततः कुच्छारोऽसाधनानां व्यापकारोऽसाधनाविधिः
(2) व्यापकारसाधनाविधिः व्यापकारोऽसाधनाविधिः

पहला व्यापकार का द्रव्यलेख रोग है। उसमें इवर्ती साधन विशेषत्व वायुस्थार्तक में, तत्त्व का व्यंजन संबंध में चारुदार। तथ्यात्मक अर्थात् व्यापन में और साधृः के व्यापन (वठन) का विशेषता संबंध में साधनानां में अन्य इवर्ती में

- व्यापकार व्यापन का व्यापकार नामात्मक है। फल और व्यापन वादु के गर्भ है। व्यापकार्य परिपरी में अन्य विशेषता होते है। मांसामार्ग में शादार्श वायुस्थार्तक विशेषता होता है। भावना है - भविष्यवादनानुनूपी भाविष्यवादनानुनूपी भावना। तो मानवात्मक व्यापन का शादार्श में प्रवाह है। यदृच्छिक है तो येचनर के समान भावना गर्भात्मक व्यापन में गर्भात्मक व्यापन का गर्भात्मक व्यापन में होता है। परन्तु कर्म अन्तर यह है कि व्यापकार का व्यापन वादु से जोड़ता है कि मानस भावना वायुस्थार्तक है।

बत: मानस का शादार्श व्यापकार के अनुभाग व्यापन-साधन से विशेषता रोग नहीं है।
दूसरे में तम: प्रक्षेपण पद है। यही विशेष है। नेपाल की के शाखाओं में वह धातु का रूप यही विशेषण है। वह का संबन्धित व्यासन निर्क्रियात्मक से विशिष्ट का अर्थ का निर्माण का तम: पद है। यही विशेष है।

अन्त में यह: यहाँ उपमा का ही प्रसाद उठ सकता है। उन्नत धातु शाखाओं में युक्तमूलम हम समान से है। लिपिधातु के लेख में श्रेष्ठ है और अर्थचित्र व्यासन में लक्षण, रक्ष ही पद को रक्ष ही साध साधन और लघु धातु यहाँ विषय के आधार मानने में भ्रातुनों ने अवश्य की है। नूतनों प्रवाहियों को रक्ष साध मानने वालों (चिन्तामणि आदि) के मत में दोष है। जैसे इवाधीमलमाण हमें लेख क्रिया का अन्य है। यहाँ प्रवाहियों की कृति के जो नियम का पलन करना चाहिए यह: किन्तु यह नियम यहाँ नि:ग हो जाता है।

समान हमें व्यासन के संबंध में धातु धातु और नाम अर्थ के अवर्त स्वर दो होता है। जैसे '-भूमिकाप चेत: ' में कृति और चेत मिन। - मिन नहीं है।

इसी प्रकार, वहन सम धातु का ही जनम इवाधी संबन्ध का है। चेत में व्यासन न करति' में ' न से पक्ष का नियम है। और चेत में अवर्तकृतिकृति कृति के अवर्तकृति का संबंध है।

इसका शाखाओं इस प्रकार है -

पक्षमुक्तकृतिमहावान्त चेतः।

इसी तरह 'वहनीय तमोगिताहः' के स्वर कृति में कृति बाधक नहीं है। अतः 'तिन्नमीमहावात' इवाधी में विवेकार ने उपमावरण कठिन बताया है।

लिपिधातु में शाखाओं संबंध व्यासन का विशेषण निर्माण निर्माण का प्रकृतिमयी वन्य प्रकृति है। तस्य हि प्रकृतिकृतिमहावान्त इवाधी का विवेकार ने उपमावरण कठिन बताया है।

1 - अलेक्साईवुल्फ़ पू. 190-192 काश्मीर 66
स्मक -

विकेरक कृत सम-लक्षण नमम के स्मारकस्म का अनुवाद है

किन्तु जैत या सारोप लक्षण उल्लेखनीय है। -

तद्वृत्तक लम्ब: वादुपमालोपमेय्योर्यं। अर्लकारकौत्सुम पू 0 202

वृत्त- सत्यर्मयेव देवप्रतिताविनासार्थकर्मणाः यज्ञ भेदमयेव नुक्षोपमानेन समयन्येवास्याः।

मेव: सारगतलब्ध्या प्रतित्ययां तद्वृत्तकम्।

अर्लकार-कौतस्कुम में ( पू 0 205 ) में कथा तीन मतो का उल्लेख है। कुछ

लोगों के अनुसार अभेद ही स्मारक है। जिसकी प्रतिभा आहार्य है। मुख्यस्थ

धर्म की उपस्थितित में अनुसार भेदप्रवेद नहीं होता। ततः उसकी प्रतिभा आहार्य है।

दूसरे मतके अनुसार अभेदार्य ही स्मारक है। इन दोनों मतों को

प्रामाण्यभाष्ययात्रायुर ने प्राप्ति आचार्यों के विख्यात माना है। विशेषतः ने प्रामाण्यभाष्ययात्रायुर

के मत की इस प्रकार उद्धृत किया है।

अनेकत - उपमेय तिरोहिताभ्यास समकोम्यात्। काय्यार्थः 2/66

हिन्दी प्राचीनकोननिमित्तमेतु। उपमाहि साध्यस्मात् भव न्यूनलिन्युक्ती साध्यस्मात्

- मेव समकोम्यात तद्धितात्। तस्मात्।

- यदोऽनां साध्यस्मात गौणलिन्य्यप्रयात्।

उपमेये भवेतुल्लितवत्व बड्गेरक भवेतु।

इसिद्धिविशा सारोपलक्षणात् साध्यस्मात समकोम्यात्। - अ 0 कौ 0 25

इन तीनों मतों में क्रमाः अभेद, अभेदार्य और सारोप के साथ

सारोप लक्षण का उल्लेख है। विकेरक के स्मारक लक्षण में इन तीनों का समन्वय मिलता

है जिस में अभेद या अभेदार्य और सारोप लक्षण का समन्वय है। अभेद या अभेदार्य

को ही स्मारक मानते पर ये दोनों व्यंग्य ही होंगे। जिस से व्यंग्यक का सिद्ध

नहीं होगी। जैसे व्यंग्यक का उदाहरण तीव्रता -

अनाल्पसः प्रभ्यमितंलिमातुहृदयात्यत्व प्रति। युक्ति तमां शरीरसाध्याः।

मरणव जलमुग्धत्रप्राप्त। सुस्थितेः विद्विदिनानाम। काय्यप्रकाश पचमो।

यहाँ विच का स्मारक गर्ल है जो मुगा मत व्यंग्यक की सिद्ध

करता है। विच के जल और विच आदि अनेक व्यंग्यक है, किन्तु प्रकरण से जल में

ही अभिधा निर्यात है। विच से गर्ल अविचित होकर पर जल में उसका अभेद गहरीत
है। विषाणित जन के ब्रान से भुगाभिन जन का बोध होता है। इस प्रकार 'जन के ब्रान भुगा' इस वाच्याध्यम स्मक की सिद्ध होती है। तभी भ्रम जादि कार्य सम्बन्ध है। भाव यह है कि विच भरे गरल (व्यागत्त) की उपस्थिति है। गरल का अभिय जन में माध्य होते पर विषाणित जन जनक के स्मक से भुगा का अभिय है। यह सम्बन्धित विषाणित व्यागत्त स्मक - इस न्याय से वाच्य स्मक की सिद्ध है। अतः केवल अभिय या केवल अभेदार्य को स्मक मानने पर उज्ज प्रकार के स्मक से विरोध होगा। क्योंकि ये व्यागत्त ही होंगे जबकि उन्हें वाच्य होना चाहिए। अतः विरोध का कारण अथवा अभेदार्य का अवधार होना है।

अभेदार्यन वाच्यवालां - अलंकारकौशुमा टोका पृ 206

स्मक में मुख्य उपमेयतावेदक है विच के अधिकारण मुख में चन्द्रतालक्ष लीरत होती है। सर्क पदार्थ के सदर दूसरे का अभेदार्य किसी प्रयोजन को लेकर होता है। यह प्रयोजन सादृश्य ही है। अतः सादृश्यमूलक अभिय या अभेदार्य स्मक है। मुखबन्धः का सामार्थ्य प्रयोग है - मुख चन्द्र इव। यहाँ उपमा है। यह में मुख विशेषता है और चन्द्र विशेषण। यदि मुखमेवन्दः के स्मक में सामार्थ्य करे तो यहाँ स्मक होगा। यहाँ चन्द्र मुख है और मुख योग। वाह्य में कुछ अन्य पदों के प्रयोग से भी उपमा और स्मक का भेद है। मुखकंत्त प्रभुलामू - मुख है। यहाँ प्रभुल की संगति केवल कमल से है। कमल प्रवाह है और मुख गाँठ। मुख कमल हसित में उपमा है क्योंकि हसित की घर्म की संगति मुखातः मुख से है और गोष्ट में कमल से। या मुखकंत्त प्रभुल के समान है।

स्मक-शाबद्वेयोः

अलंकारकौशुमा में स्मकशाबद्वेयो के संवेद में तक्षण की माध्यता को लेकर अनेक मर्मों की रच्यां की गई है। इन मर्मों के उदाहरक आचरणों के नाम नहीं लिए गए हैं। इन में से अधिकांश मत रायगाधर में भी मिलते हैं। कुछ मत प्राक्तनों के हैं और कुछ मत नव्यों के। इन में एक रूपस्थि इस प्रकार है। -

स्मक में तक्षण को न मानने वाले कहते हैं कि चन्द्रमध में और मुख में तक्षणशाबद्वेयोः -
1- चन्द्रगतलविश्वनामसुखम्
2- मुखगतलविश्वनामसुखम्

ये दोष संगत नहीं है, केवल रक्त का गुण दूसरे में नहीं जा सकता। यह बक्ष अपवानदृष्टि का जान पड़ता है। दृष्टि ने स्मक में लक्षण का खण्डन अनेक युक्तियों से किया है। उनके छ मतों में से उक्र पूर्वपक्ष प्रमाण और तृतीय है। पूर्व पक्ष (उम्मानुगत कालिकामन्नमें) का खण्डन यह कह कर किया गया है किंतु स्मक में लक्षण का सम्बन्ध इसी से ही है।

मुख्यभोगमनुगतलविश्वासादसामान्यमणुन लक्षण। अको पूर्ण 207
स्मक में लक्षण की मापदंड को नवीन नहीं कहा जा सकता। प्रावीन वाचकों ने अपने नतों में इसका संकेत दिया है। नवीन में पाण्डुराज
की भौतिक विशेषज्ञ भी स्मक में लक्षण का सम्बन्ध करते हैं। पाण्डुराज ने स्मक में लक्षण का चिह्न नहीं की, विशेषज्ञ में की है। विशेषज्ञ ने लक्षण में इसका सम्बन्ध उल्लेख कर उस पक्ष का बतावा दिया है। लक्षण की यह मापदंड उद्धरण की गुण-बुद्धि के सम्बन्ध पढ़ने जाती है।

शुभभोगमन्विरहावत यतं पदेन पदन्तरम्
गुणविद्याधारणेन दुम्पेत स्मरक तुतत। **कृष्णालकर सार संगम गुणविद्या पदन्तर प्रधानेन पदेन यशुज्ये तद्युज्ये हेतु।** (३४५-३५१) किया।

स्मकेश्वर -

अको रक्त में स्मक के बाहर बेहतर रहता है। विशेषज्ञ ने माला-स्मक में रक्त नवीन तत्व को शर के संकेत दिया है। मालास्मक में विशेषज्ञ की घर नि
आश्वासन है। केवल यहाँ रक्त उपयोग पर आज विश्व उपयोग का बतावा अभिमुख
रहता है। इसे नृत्यकथा के बाहर वर्णन में मन्यमयुगिश्वेत्रम् कमलवकन्तकाष्ठशामिलम्।
"भूते कईसरोचरि मुधुरयथाहासिनिगिरिसतः। अको रक्त पूर्ण २०१६।
यहाँ एक कईसरो भूति में मन्य, ध्वनि शब्द और नृत्य का वर्णन है।
कुसुममालविषयम् मन्य में निन्दा को व्यक्ति पक्ष भिन्न ने की है।
वस्तुकला-सार लगभग स्वागतिक कायमरंगेरिक रूप में कान्तेश्वर। अको रक्त पूर्ण २०१६।
यहाँ एक वर्गमेनाधिकार में सुपर और वंद का भवेद प्रतीति से विशेष की जाती है।

*चित्रमणांस्य पूर्ण १६६ १६६ संता किरों कारणसः इति*
निवर्तना

विषयक का निवर्तना तत्त्व तर्पणरागत है -

उपमायवर्तनो यज्ञौ-प्रणवूर्व्यावतः

यदु किंद्रिय कालकार्यवर्तनीयता चूकता । अतिकारकोत्तम पूर्णा 262

वक्ष्याय पदार्थ तथा कार्यकारणम् वे निवर्तना के तीन शेष है । पहले में ब्रत्यायता की अथवा उपमा का भान पहले होता है । ततो उसका पर्यवसान

उपमा में होती है । पदार्थनिवर्तन का उदाहरण इस प्रकार है -

उपमाया कहानी साधनसक्रियतावनिमित्तने उदाहरण ।

सुनु: गुरु हस्तके चन्द्रविहारी गत पत्रा । गाथा 1/13- छाया तो कौशिक

हस्ताक्षरोऽर चन्द्र के श्लोक का उद्देश्य में पर्यवसान हुया है । इसलिए यहीं विषयवर्तनीयता है । जयरामदुर्दाचार्य का धारणा है कि वाह्यानिवर्तन में उपमान अनुभव होता है जब कि पदार्थनिवर्तन में उपमान प्रसिद्ध हुया करता है । उपमा पदवी में चन्द्र को चन्द्रविहारी में लक्षण है । साधनसक्रियतावनिमित्तने अवस्था में चन्द्रपद का सम्पन्न है । अतः चन्द्रायात्मासूचक अवस्था के लाभ से यही लुप्तपणा ही माननी चिन्तित -

न्यायवक्ष्यायननवस्थुतः ईदुशुधेन्द्रविधिः प्रति प्रभुमेहात्मनाविनिवर्तनायमुप्यमानम-

न्यायस्यमुमूष । इत्थ तु प्रतिश्चिन्तित निवेश्यं । वाह्यानिवर्तनायानैपादस्य स्वविशेषार्थातः -

वानिवशक्षाय चन्द्रपदस्य चन्द्रविहारी नक्तां । तेन चन्द्रायात्मासूचकायाध्यायमेव लुप्तपणमामैर्ये-

चन्द्रायात्मासूचकार् ।

अतिकारकोत्तम: पूर्णा 263 उद्धुपुत

किंतु विषयवर्तन को यही लुप्तपणा अभिप्रेरणा नहीं है । यहीं लक्षण को

मानने में वे गीत सम्बन्ध हैं । उनके मात्र निम्न भंडारियों में अवलोकनायों है

वायुस्यास्वविशेषिणिशीतादृश्यमामात् । चन्द्रपदस्यवैद्यक्षत्वादन्यः प्रभुमात्

उसकी शक्तिकल्पना च गौरवताः । एक पदोपत्त्वमा यथा गव्यतयेकी न्यायमन्यायात्मा

लौकिक को धारणा है कि पदार्थनिवर्तन का उदाहरण संगत नहीं है ।

यहीं निवर्तना उपमा में पर्यवसित नहीं हो पाई है और दूसरी वात यह है कि यहीं

उपमा की स्थिति हायमालरातः है । इस वस्त्र में निवर्तना की मानना और दूर को वात है।

चन्द्रपदस्यमूषः की चौँ तरह उक्त पदवी में प्रसिद्ध गुण के साधनामान्य से उपमा देश-

गुण नहीं है । चन्द्र के अनालवक्ष्यति प्रक्षेत्र यह घर का न तेकर चन्द्रग्रह विन्ध ही इसमें प्रधान त: अभीत जान पड़ता है । यह घर प्रसिद्ध नहीं है । घर की व्याख्या

में स्वयं विबेश्यर ( जो कौशिक पूर्णा 14 ) ने प्रसिद्ध गुणावलम्बी ही उपमा मानी है मुखः
को चन्द्र के समान कर्कक्युक्त बनाये में विचित्रित है या नहीं? यहाँ सत्त्वद श्री प्रमाण है। उपमन से प्रसिद्ध गुण हेतुक्षेत्र है। -

उपमन हि प्रसिद्धगुणक्षेत्र्यक्त महत्व है। महामायेद्रोध पूर्व ५३०ऊँ ३० यहाँ अप्रसिद्धगुण के स्वस्त्रम से उक्त पद्म में चन्द्र का उपमानत्व धर उसी चर्चें में बा जाता है।

दुःखार्याः में पर्यवसित होने वाली निश्चितना के पद्म को लेकर अर्थ की निदर्शना से अनुमान, अर्थात् आर्याः अर्थात् दुःखार्य का निमित्त प्रतिपादित है।

उन्नत पदमवाह्य यो तथ्यवेत्र स प्रतिपादित हुआ।

शेषालम्बतो दुःखार्यकामास्ततपुनः पद्यवकः । अर्थ को २६४ यह दुःखार्य में पर्यवसित निदर्शना का उदाहरण है। यहाँ पत्तन विषय के दूरा (अपने स्वस्त्र ) पत्तन का तथा पत्तन के कारण लघु होकर उद्योग की प्रश्नत का सम्बन्ध प्रकट हो रहा है। लघु होकर भी उन्नतपद की प्रश्नत दुःखार्य कारण है। 

और पत्तन कार्य है। पूर्वार्ध में कार्यकारणभाव है। उत्तरार्ध दुःखार्य में पर्यवसित है तथ्य होने पर उन्नत पद प्राप्त करने वाले का पत्तन पत्तन के कारण के समान होता है। 

यहाँ अनुमानलक्तक की कथना इस प्रकार की जाती है।

प्रतिश - यह निश्चित गिराने वाला है।

हेतु - दुःख होने पर वह उन्नतपद प्राप्त करता है।

दुःखार्य - पर्वत के प्रश्नर पर पर्वत हुए पापाण के समान।

यह अनुमान सत्त्व है। कारण यह है कि पूर्वार्ध में लघु का अर्थ मन्दमत है जबकि उत्तरार्ध में उसका अर्थ अपूर्ण गुरूत्व है। उन्नत का अर्थ पूर्वार्ध में अपूर्ण होना है। और उत्तरार्ध में उसका अर्थ शेष पर सिद्ध होना है। इस तरह हेतु के अर्थों में भिन्नता है। भव ( संविधानसम्बन्ध ) का निर्देश संबंध नहीं है। अर्थ प्रकार में व्याख्या किन और लिख परामर्श होते हैं। सभी दुःखार्य उन्नत होकर गिरते नहीं वे बे जाते हैं। पद्म में यह व्याख्या नहीं बनती तभुल, उन्नतवर्ध और पत्तन के भिन-भिन अर्थ बनते गए हैं भिनसे अनुमानलक्तक सिद्ध नहीं होता।

यहाँ प्रश्न यह है कि तभुल, उन्नतवर्ध और पत्तन के अर्थको अर्थात् वस्त्र से इनकी उपस्थिति हो जाती है। अतः जो देश उम्र कहा गया है वे नहीं रह जाते। अनुमान में देश प्रकार की व्याख्या होती है - पारमार्थिकी और कविकथिता।
कविकोशल क्यानिये से ही अनुमान प्रस्तुत होता है। अन्यथा उत्तरार्थ के कार्यकारण -
भाव का दृष्टांत भी नहीं बनेगा। इसका समाधान यह है कि पतन के प्रति तथा की उन्नत-
पद की प्राप्ति हेतु है। अतः किसी के पतनविषयक साध्य न होने से अनुमान नहीं हो सकता।
रक्ष निन्त प्रकाश का अनुमान भी काटित हुआ है -

प्रतिविने - पतने तथा अनुसारप्राप्तिज्ञान ।
हेतु - पततवादु दृष्टांत - रूपदायक अवस्था पतनवत ।

यह अनुमान भी नहीं बनता। यहाँ प्रकाशोद्वस्तांत में पतन का भी
उल्लेख है। पतन का पद मानने पर हेतु अवसर भी हो जाता है जब कि उसे समाधान होना।
व्यक्त है यदि पतन विशेष की पथ में तो निपतन गयमान है। वह सिद्ध नहीं होगा।
पद्य में पतन कर्म है उन्नतपद-प्राप्ति कर्म है। बिन अनुमान-प्रक्षिप्ता में यहाँ
उन्नत पद की प्राप्ति कर्म (साध्य) है और पतन हेतु है। अतः कीविविषा और अनुमान
प्रक्षिप्ता में विरोध होने में से अनुमानलक्ष्य निर्देश है।

कार्यकारणसम्बन्धी और विशेष से सामान्य समर्थनस्व अर्थत्तरस्व से कार्य
और कारण भिन - भिन प्रकाश के है। अर्थत्तरस्व का उद्देश्य देखिए -

निर्देशात्त्वमात्मातीतुसुधर्मेव भॉतिक विषयितमु ।

प्रस्तुत एहाम नित्यम: श्रविभुमेह बीमाफ़िणी पतनम । वो को । पृ । 264

यहाँ दो वाक्यार्थ है - समान और समर्थक। इनमें भिन-भिन कार्यकारणमात्व
है। समर्थनवाद तथा अपने वेद दे से पतन का यथार्थ उल्लेख करना कारण है। और अतः
सुदार वस्तु को भी निर्देश समाप्त कर्म है। इस कार्यकारणमात्व के दो भिन-भिन
भौम है - एक कार्यकल दूसरा कार्यकारणकल के रूप में। इसी प्रकार समर्थक वाक्य में
भी है। निर्देशना से यह दुर्भ कर्मशार-राण प्राप्ति की समस्ता है। यहाँ समर्थनवाद वाक्यों
में उन्नतपदप्राप्ति कर्म है और पतन कर्म है। कार्यकारणमात्व में दो धर्म है - एक कार्य-
कर्म है दूसरा कारणकर्म। इसी प्रकार समस्तकाला में भी कुर्कार्यकारणशास्त्रकाल कार्यकल और
कारणकल के भिन - भिन धर्म है। समर्थनवाद और समर्थक (वाक्यों ) कार्यकारणशास्त्र
धर्म की अभिविन्यात्म है। अर्थत्तरस्व के उद्देश्य में ( भॉतिक और पस्तित में ) ध्रुवस्व
धर्म की अभिविन्यात्म है। निर्देशात्त्वमें भी पतनकाला धर्मस्वाय है। इसी निर्देशना में
अर्थत्तरस्व का तथाकथित नहीं होता। निर्देशना के उस भूमि में किसी विशेष घटना
को समाझ-विस्तार का मुख्य योग्य नहीं है। अतः धर्म बोधयमुः हस्तिकथयनुः हस्ति
विषयितनुः और केवल हस्ति आदि प्रयुक्त होते है। दो वाक्य परस्पर हस्ति से जुड़े रहते
यहाँ पूर्ववाद्य के प्रतिपद्ध कार्यकारणामात्र में उन्नत प्रतिपद्धताल कारण है। इसी प्रकार दूसरे वाक्य के कार्यकारण की समानता है। अर्थात् यद्यपि वे कार्यकारणामात्र भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। पूर्ववाद्य में निर्विवृत्त कारण है और विनिर्वित्त बान कार्य। उत्तरवाद्य में पीतल कारण है और चक्षु का विपरीत दोनों कार्य। पूर्ववाद्य और उत्तरवाद्य के कार्यकारण भाव में धर्मसाध्य नहीं है। दोनों वाक्यों के कार्यकारणामात्र में इसी सामान्यविशेष्यभाव धर्म है।

रचना द्वारा पूर्ववाद्य कार्यकारणामात्र यथा सामान्यविशेष्यभावविशेष्य- तैयार-न्तरक्रिया ही फलतम।

अर्थात् कौशम पृ० २६५

दोनों वाक्य परस्पर निर्विवृत्त है। समर्थक वाक्य में हि और यत्र बाद समयन्त्रकता पर प्रयुक्त होता है और नहीं। यह विशेषकर ने अर्थात् निर्देशनात्मक के लक्षण में कार्यकारणामात्रा का उल्लेख नहीं किया, किंतु निर्देशना से अर्थात् निर्देशना की मेध-सीमाकाल में वे कार्य का कारण दुरा या कारण का कारण दुरा या कारण का कारण होता रहता है। इसके कारण उन्हें स्वयम् (अर्थात् पारस्परिक पृ० १३९) से भली भूति है।

निर्देशना तथा उल्लिखित दोनों वाक्य साधुस्वर वाक्यस्य मुख्य है। दोनों में दो वाक्य भी होते है। पर दोनों वेत में भी है। दोनों के वेत को बताने के लिए उद्धारण-काल निम्न प्रकार से है।

त्रै-धुर्ण रूप तथा मनो मनोभावकल्पितमुः

अर्थात् हि विशेषरीकृतता दुर्भाग वर्ण जन्म।

मद्य को पृ० २६५

इस पद्ध ये दो कार्यकारणामात्र में कार्य की भिन्नता है। निर्विवृत्त और विकसा में भैत है। किन्तु यही निर्देशना भैत परिवर्तित नहीं होता क्योंकि उस पद्ध में समान्यता के संबन्ध से होने वाले दृष्टान्त का उद्धारण है। यहाँ पूर्ववाद्य उपयोगिता बांध से उत्तरवाद्य का उपयोग है और उत्तरवाद्य का कारण अवधारण। नूप अर्थ बन्ध निर्विवृत्त अर्थ कुमुदिनी, मन अवध वर्ण, मनोभावकल्पित और पूर्ववाद्य मृत्तिका तथा मनोभाव और विकसा के मिलकर विकसान तथा विकसन और विकस। इसमें विभाजित विशेषभाव है। ये परस्पर भिन्न हैं, तथापि परस्पर साधुस्वर का वातावरण पर इनमें विभाजित विशेषभाव से रूढित है।

निर्देशना के कार्यकारणामात्र में भैत है जब कि दृष्टान्त में दोनों रूप है। यहाँ पूर्ववाद्य तथा उत्तरवाद्य के कार्यकारणामात्र में (अर्थात् पृ० २६५) उल्लिखित वाक्य का कार्यकारणामात्र अवधारण होता है। इसी निर्विवृत्त होता है। जब तक दोनों जो न भिन्नभिन्न तब तक पूर्ववाद्य का मान नहीं होता। दृष्टान्त में वाक्य भिन्नभिन्नता की दृष्टि से दो वाक्य

1 - तयोपितवाय परिवर्तितहितमात्रावेवाहितामात्र। अर्थात् कौशम पृ. २६५
परसर निर्पेक्ष रहते हैं। पूर्वोग्य के कार्यकारणमाय का बोध उत्तरार्थिय कार्यकारणमाय के
विना हो जाता है। उत्तरार्थ का कार्यकारणमाय पूर्वोग्य के कार्यकारणमाय में निर्पेक्ष है।
किन्तु निर्देशना में दो वाक्य समेट रहते हैं। त्यस बुद्ध भाव में रुप से यह लिखित है कि र जवर्दन होते ही नायिका का मनोनिर्वाह है। दर्शन न होने से नहीं है। इस व्यक्ति
में पद्ध का उत्तरार्थ वृद्धि है। इसी से मनोनिर्वाह ओर राजवर्दन में कार्यकारण-
भाव उत्पन्न है। किन्तु निर्देशना के पद्ध में उत्तरार्थ का कार्यकारणमाय की पूर्वोग्य के
कार्यकारणमाय का सबसे ग्राहक है। निजीतर देशों के अनुसार यहाँ दोनों का शेष बनता है।
जैसे वृद्धि में अन्यव्यंजनित है। उसी प्रकार निर्देशना में भी है। निर्देशना में अन्यव्यंजनित
का ग्राहक कार्यकारणमाय है। इसमें अन्यव्यंजनित का ग्राहक समाध्य में उत्तर
कार्यकारणमाय सबसे ही आकृति है वहाँ निर्देशना है। किन्तु नहीं पूर्वकार्यकारणमाय के
ग्राहक में ही उत्तर कार्यकारणमाय अनुभूत है। वहाँ वृद्धि होता है।
तेन व यत्र कार्यकारणमाय सबसे उत्तरकारणमायोवृद्धि सत्ता निर्देशना, यथा
तु पूर्वकार्यकारणमाय ग्राहक स्वेतकारणकारणमायोवृद्धि सत्ता वृद्धि। - अो कौ 20 26

विशेषज्ञ (अो कौ 20 277) ग्रंथ की धीमी विशेषज्ञता का विशेष
लक्षण न देकर उसकी चर्चा अधृत है। इस अवलोकन का पहला इलेक्ट्रोनिक साधनमार्ग उत्पन्न
के साथ समक की समस्या है। संस्था के कारण विशेषज्ञता ओर स्माक का
अधार तत्त्व है। पर दोनों में धंडा भूख भी है। स्माक में विशेषज्ञ का समाध्य होता है।
विशेषज्ञ का अधार यहाँ उपयोग है। ज्ञानकर्म स्माक में अध्येय का भाषा वाहक है। उपयोग के साथ उपयोग का अध्येय सारणीय स्थान पर अनुसार है। किन्तु विशेषज्ञ के
प्रथम शेष में उपयोग अध्येय शक्ति नहीं होता। अत्यावृत्ति शेष की उपयोगिता न हो सकने के का
कारण वाहक अभेद्य नहीं होता। उदेश्य (कि चंद्रोदयम, कि पनस: लिपिकोमयम) में उपयोग के निर्माण की जी प्रक्रिया चल रहो तो उसकी यहाँ परिणत है। आधुनिकता
में उपयोग का स्वयं निर्माण हो जाता है। अव वन का पूरा निर्माण मुख में है।
इस विशेषज्ञता में वाहक अभेद्य अभेद्य का प्रसं नहीं उत्तर। उपयोग की तात्कालिक विद्या है। इस
प्रकार स्माक में सारणी लक्षण है कितना विशेषज्ञता में साधनमार्ग।

यथा चंद्रोदयमनिकृतिं निकृतिं। तत्र मुखावविद्यमनिकृतिं
नयेदेव ने स्मृतिश्लेषित भिन अलकार माना है ।

परंतु नीतीश्वर ब्याख्यानिः सरास्त्र श्रेणिः शास ॥ चन्द्रलोक

यहाँ विभ्य नेत्र का विभ्यी नीतीश्वर के दूरा निग्राण हुआ है

इसी तरह विभ्यों ( तीर्थज्ञान से विभ्य व (कदाि) का निग्राण है । यहाँ स्मृति और श्रवण दोनों हुई है ।

बतूळ: यहाँ स्मृति बन नहीं है । इसी अरहण चक्र कम रहता है । अमितर्याय में उपमान पद के दौरा उपमान का काम चल जाता है । उक्त उदाहरण में उपमान (नीतीश्वर) का उपासना हुआ है । नेत्र और कदाि जान उपमान उपासन नहीं है। आरोहण नीतीश्वर के ही नेत्रादि का निग्राण हुआ है । नीतीश्वर से ही मुख की विभिन्नत्विवसा है। अलकार के प्रकार भेद में विभ्यों के दूरा विभ्य का निग्राण होता है । इत्यादि विभिन्न तथापि विभिन्न विभ्यों के स्मृति होते है न कि विभिन्न के अभिप्रय स्मृति है । बत: स्मृतिश्लेषित अलकार के प्रकार भेद में भिन नहीं है ।

सम्भवतः, विभिन्न भेद और प्रकार का अन्तर्गत

अनुसार समाधन का स्वरूप इस प्रकार है ।

1 - अलकारकोपुरम पृष्ठ 277 काल्यामाला 66
जयरथ (विसेषतः पृ. 95) के अनुसार प्रतिवर्तःपुष्पमा में साधुस्य वस्तुताएँ के लिए प्रकृतार्थ के साथ अप्रकृत अर्थ का प्रहर होता है। इसलिए प्रहर होता है कि इस अर्थ के अनुसार भी है निस्संदेह प्रकृतार्थ की प्रतिमा की विशेषीकरण है। साधुस्य की प्रतिमा के लिए अप्रकृत अर्थ का प्रहर नहीं होता। जगन्नाथ नै (रसगुणाय पृ. 135) सत्यार्थ जयरथ के अर्थ का प्रहर होता है।
जब कि प्रतिस्पर्धा में यह ब्याख्या नहीं है अतः सहस्यप्रतीति बढ़क नहीं है जो अय-रथ को मान्य थी।

रक्त प्रकृतकर्मकारणमः ग्राहक बायिनीखं स्वायत्तोऽधारायमाधिकलोपुक्तार्थः, अपरत्र च न तथे भेद्य सूचत्व त्वात्। - अर्लकार दक्षिण पू 290

यह भेदक तत्त्वोऽर्थ सहारणे वे और रमण होगा। दृष्टान्त का

उदाहरण तालिका।

सर्वसाधारण सर्वसाधारण त्वषुदेशः मुद्र मान।

तत्साधारण सतपञ्च सारभोगः सौरभा। अर्लकार दक्षिण पू 285

रस पदय में नल को अन्योष्टत करने में दमयती अन्योष्टीकरण से कारण

है। पहली सुधकों का अर्थ प्रकृत है और दूसरी का अर्थ अप्रकृत। अप्रकृतकों हों दृष्टान्त में पर्यक्षित है। प्रतिस्पर्धा में निन्म उदाहरण में - प्रतिस्पर्धा के उदाहरण-

लघु वीर परं विराज्ञे दमयती किता किफते किता।

तस्मानन्तर रक्त सोधे मनोवाहार स्वरूप रामणियोपक्षः। वही पू 285

में विराज्ञे और सोधे दोनों का सहृदय में पर वर्यन न है। यहूं कस्तुः

अन्योष्टीकरणायं न हन्यै।

दृष्टान्त - और तुल्योष्टिता

दृष्टान्त में कवि की दृष्टि अप्रकृत और अप्रतिम चलनों के रक घर्म के साधन की और लगी रहती है। इसके घर्म स्वयं पद से उपलब्ध रहता है। इससे साधारण

घर्म की प्रतीति भी होती है। परीक्षण की निम्न परिभाषा से रहता है -

प्रकृतप्रकृतन्य यथायथमन्यायं किता किता - अष्ट दक्षिण पू 290

प्रकृत और अप्रकृत चलनों का निष्क्रिय से अन्यय होता है। वह गुण-क्षण

अरण्य एवं श्रीमती दी है। समय और भविष्यत वाद्य ने स्थारोक कार्यक्रम दृष्टान्त में अनेक होने और के साधन के वल कर्म कार्य का संबंध प्रतिपादित किया था। विशेष वर्णम ती कर्म के साधन कर्म के अंतर्गत सिद्धि और अप्रतिमाक्रम के अनेक विशेषणों का हंगामा, समाधान और व्याख्या की गई है। निसे उनकी मस्तिष्क दृष्टान्त हो रहती है।

यदूपर्व में ग्रह को कर्म नहीं माना जाता। विशेष उनमें से ग्रह को भी उदाहरण दिया है। 

कहीं कहीं कृति 2/3/65 से प्रस्ताव सम्बन्धित स्वायत्त में ग्रह का वित्त उन्हें मान्य (अर्लकार दक्षिण पू 293) है।

तुल्योष्टिता में वेतन प्रस्ताव या अप्रस्ताव चलनों के रकम सम्बन्धित स्वायत्त की और वक्ता की दृष्टि केन्द्रित रहती है। विशेष वर्ण के तुल्योष्टिता का रकम दूसरा.
मौलिक भेद दिया है जो न्यायधाराती में त्र प्रकार है -

सप्तक्षेपकयोष्मप्रत्ययायमान्यमन्यता तुलयोगिता। अत्यस्त भविष्य पूर्व 23 चब्बीसक
उदाहरण इस प्रकार है -

त्रोतसत्सानुपोषो त्रेतसद्वरुपकरणितमा।

हिमियोयितिना विभिन्नतुलसुत्तक चकोरभव क्रियाकालम। वही
राज्य में ब्रह्मक जोड़ा स्क दृश्ये से अलग हो जाता है संतास्तक दृश्ये ते
से त्रोतसत्सानुपोषो त्रेतसद्वरुपकरणितमा। अतः त्रोतसत्सानुपोषो त्रेतसद्वरुपकरणितमा।

(निविष्टवाच्यमानानु) है चकोर चिन्हकारसः में सवलीन है इसमें रूप-?
उच्चविविक्तकेन भावाच्यकन इद्धे त्रोतसत्सानुपोषो त्रेतसद्वरुपकरणितमा। वही
सुलकक दृश्ये जोड़े को काचः तुलयोगिता। अतः त्रोतसत्सानुपोषो त्रेतसद्वरुपकरणितमा।

(निविष्टवाच्यमानानु) है चकोर और
उच्चविविक्तकेन भावाच्यकन इद्धे त्रोतसत्सानुपोषो त्रेतसद्वरुपकरणितमा।

इन दोनों का अविलोकनीय तुलयोगिता इस भेद में पतित होता है।

कृपया आर्थिक कहते हैं कि तुलयोगिता से दोनों भिन्न नहीं है। दोनों अर्थातः
धर्म एक बाइम ग्रहण किया जाता है। इसी में विक्षित है। इस पूर्ण की चर्चा
विशेषकर ने भी की है। पर दोनों दृश्यमन्यता त्रोतसत्सानुपोषो त्रेतसद्वरुपकरणितमा।
की अनन्तीयता करने के पथ में है। तुलयोगिता से दोनों प्रातिनिधित्व है। दोनों को भारत ने ( नाट शाखा 17/58) जारी
मुख्य अध्यक्ष की निम्नान्त है। इस प्रकार दोनों प्रातिनिधित्व है।
प्रकृत और अभ्रकृत तथा
तुलयोगिता में प्रकृत या अभ्रकृत है। क्षितज्ञ: दोनों स्वतंत्र अलगकर है। दोनों में चर्चाकर
का मुख्य कारण धिंग्य और धिंग्य कर है। और प्रकृत और अभ्रकृत दोनों के एक धमाक्य में
विक्षित है। जब के तुलयोगिता में केवल प्रकृत या अभ्रकृत के एक धमाक्य में
विक्षित है। विशेषकर की संख्या के बनाया एक दृश्यकर प्रकार की तुलयोगिता के
चर्चाकर का कारण बनाया के सवलीन और धिंग्य है।

व्यतिरेक

विशेषकर की धारणा है कि जहाँ उपमानोर उपमे य की समता के वर्णन
में उपमिक वैद्यक्य प्रभाव जाता है वहीं व्यतिरेक होता है -

उभयो साप्ताययोक्तिविभेष्य उपमयोगे व्यतिरेकः। अरु को २००२९७
स्वर ( काव्यातिक 7/86/47 7/86/69 ) ने उपमान से उपमिक वाच्य
या त्वंत्स्म्य धीव्यतिरेक माना है। स्वर और विशेषकर आदि ने भी अनु-
सरण किया जबकि नक्षत्र दृश्यकर की माति विशेषकर ने वामन (काव्यातिक २००२४/३/२२)
की परमारा का पालन किया है वामन को उपमेयाविषय में ही व्य तिरेक अभिमत है 
इसका एक प्रविष्ट उदाहरण इस प्रकार है।

लीला कीपण्डती लाली मूर्ती मूर्तिजीत नित्यनाधि

विरम्म प्रसोद सृजनार्थ योगननिर्विवायो यादु तु । अतःकारकोश 297
यहाँ स्त्री की परमारा के अनुसार योगन उपमेय है और चन्द्र उपमान। चन्द्र नून
अन्धक गुणमित है और योगन कम गुण बताता है। यहाँ के चन्द्र में अवधिक उल्लभ बताया वाला है। विवेकवर्थी की धारणाए कि यहाँ चन्द्र और योगन की उपमानोपमेयता उनके 
क्षय पर वास्तुत है। चन्द्र क्षय उपमान है और योगन क्षय उपमेय। चन्द्र पहले घटता है।
ईश्र बदलता है योगन पहले बदलता है और चन्द्र में घटता है जस प्रकार परक्षय और 
योगनक्षय का समकाल सिद्ध नहीं होता। चन्द्र लीला देखने पर भी पूरा हो जाता है। 
अतः न्यूनगृह बताता है। ईश्र न लीलाओं के कारण योगन उक्ति कुप बताता है। चन्द्रक्षय 
उक्ति से वाचित है। योगनक्षय किसी से वाचित नहीं है किंतु की योगन का उल्लभ मिला- 
प्रेत है। अतः यहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय का उल्लभ वर्धित है।

विवाद से ( सत 10 10-52) उपमान से उपमेय के आक्र अपरक में भी 
व्यविरेक माना है | जैसे |

ह नुमावध विर्मासा मयानुधर्माहे जैसेनत्तरण विनयकत । नेपाल 9/123
इसमें हनुमन्न आदि के दीनवकर्म ( उपमानव ) की अपेक्षा नल अपने दीनवरक 
को न्यून समकाल है। यह मत संगत नहीं है। यहाँ चन्द्र: उपमान की उक्ति और 
उपमेय की न्यूनता अधिकता नहीं है। प्रकृति अर्थ के अधिकता का वर्णन उल्लभ स्वस 
है। नल और अपरकार्य के न्यूनगृह नक मिला है। अपरक नल निवेद को प्रकट 
करता है। नल नल दीनवरक इसके नल निवेद के अधिकता को प्रकट 
करता है। अतः यहाँ उपमेय 
और अपरक में उक्ति क्षमता प्रकृति का अविवाह डाना और अविवाह न भोजन है।

जगत्य जगत्य जननाथ से ( सरेरामाथ शु 477 ) उपमान से उपमेय की न्यूनता 
में व्यविरेक माना है। जैसे |

अर्थवर्त जगत्सरस्त्रण न्यूनतत्वत्र समातात्त्व के वेदमेव रहस्तु।
कथा समारोहित हन्त रसनामधुसूल पुनः द्वित्र।
यहाँ देवताओं के कारण तुम रद्द न से न्यून हो और अन्य धर्मों से तो 
समान हो इस प्रतीति में व्यविरेक है। किन्तु उक्त उदाहरण में विवेकवर्थी ( सत 10 कोष 
पु 0 299) व्यविरेकता न्यायकेतु में पक्ष में है। यहाँ पहले समातात्त्व राजा की 
निन्दा प्रतीति ।
कुछ आदर्श इन दोनों अलेकारों में से रक ही को मानने के पक्ष में है। जैसे - विभागना में कारणामात्स्य कारण के विद्यमान रहने पर भी कार्यास्व की उत्ति न होने से विरोधपूक्त है। इसी प्रकार विरोधपूक्त है विभागना घटित हो जाती है। यह सभी जानते है कि कारण न रहने पर कार्य नहीं होता। रक में कारण न होने पर नौर दूसरे में कारण रहने पर कार्य विषयक रहता है। दोनों में कारणवद समान है कारण के रहने पर भी कार्यमात्र में विरोधपूक्त है। यहाँ कारणामात्स्य में भी कार्यमात्र कार्यकाल होने से विभागना वन जाती है। इस रूप से विरोधपूक्त मज़बूत विभागना में संक्रान्त हो जाता है। अतः दोनों रक ही अलेकार है।

इन दोनों अलेकारों की भिन्नता के प्राथम समर्थ में विचारवाद ने कालपय सूक्ष्म से उक्त मायता को अर्थात ठहराई है। विभागना में इस धर्म से कार्य प्रति-पाद्य है उसके कारणामात्स्य में भी उसी धर्म से संबंध कार्य की विचार है। यहाँ कारणामात्स्य में रहने वाला कारण है जिसके अभाव में अन्तःन अत्यधिकित अभाव नहीं है। अभाव-सम्बन्धी कारण का कार्यकाल यहाँ उभर है। कारणामात्स्य को अभावकाल काल छूटते है, कारण स्थान ही। कार्यमात्र का अभाव-कार्यकाल नहीं। कारणामात्स्य का अभाव कारण स्थान ही है। इस मायता से देश दत जाता है। यही माय लक्ष्यायक की दुर्दृश्यी में दृढ़त्व है।

यद्यपि चाहिए, कारण का विरोधपूक्त तथ्यात्योगिक अस्पष्ट अस्वश्चिन - नौरती विभागना। रवी विभागना स्वस्त कारणामात्स्य करण तथ्यात्योगिक अस्वश्चिन - कार्यकाल न विकसित। हेतु तथ्यात्योगिक करण तथ्यात्योगिक कार्यकाल चिन। रवी कारणामात्स्य-विकारणात्मक अस्वश्चिन। अतः कारण-अस्वश्चिनी कारण-विकारणों से तद्भावात्मक वन।
विवाहन में जिस काल में कारणावध कर उसके उत्तरार्थन में ही कारणावधिति विवाहित है विवाहित है इससे विरामत है। यदि काल-वेर के आधार पर देवी का एवें है।

यदि कारणवधकान्यावधनात्मक कारणवधकान्यात्मक सा विवाहन में कारणवधकान्यात्मक। कारणवधकान्यात्मक च यदि कारणवधकान्यात्मक सा विवाहित है। - अर काल पृथ्वी इस दोनों अलंकारों का कश उद्देश प्रेरित, विवाहन में कारणवधकान्यात्मक के साथ कारणवध में है। कारण न उद्देश पर कारण नहीं होना चाहिए था-यहाँ व्यक्तिक (तद्भव-तद्भव) का व्यक्तिमता है। कारण व्यक्तिमता कान्यात्मक है, कारण नहीं होते। दोनों की उद्देश में नहीं है। विवाहित है विवाहन में कारण न उद्देश के साथ कारणवध में कारणवध का व्यक्तिमता है। कारण न उद्देश में नहीं है कि कारण अनुवाद-व्यक्तिक का व्यक्तिमता है। इस प्रकार दोनों अलंकारों में अर्थतः के कारण बहन-बहिन है। अर्थतः दोनों अनुवाद अलंकार है।

अर्थतःस्वास्थ्य में विक्स्कर का अन्तर्भवन

अर्थतःस्वास्थ्य के लक्षण में विवेकवास ने कोई नई चीन नहीं जोड़ी है। अर्थात् साधारण और व्यायाम से सामयिक और विशेष रूप से परम्परागत सम्पन्न है। वहाँ अर्थतःस्वास्थ्य माना गया है। अप्रवेशकोक ने विक्स्कर को कहकर बहन अलंकार माना है। विक्स्कर में विवेक की पूर्ण साम्यात्मक से की गति है। और उसकी उद्देश के लिए तीसरे वायु विशेषी विवेक का उपाय किया जाता है।

यदि ग्रहण की साम्यात्मक विवेक: स विक्स्कर: इसने मे नियर महत्त्वकह क़मर उत्तर देवी का बुध । कुक्तंयतन दुर्भा सागर उत्तर देवी। कुक्तंयतन पृथ्वी ।

तब निम्न महत्त्वकह दुर्भा सागर देवी। कुक्तंयतन पृथ्वी ।

तब निम्न महत्त्वकह दुर्भा सागर ।
कि दीक्षित के मत में सामान्य ( एको दो दो गुणव्यतिकता निम्नता ) अप्रसिद्ध है ।

निसे समर्थन की आपेक्षा है। विशेष का अन्तर कर दिया गया है निसे विना सामान्य प्रतिभात नहीं होगा और अन्तरलाइफ पद्त्र का पूर्व विशेष है निसे समर्थक सामान्य बिना नहीं होता। विशेष के समर्थन के लिए सामान्य को लोकसंख्या मानना

चाहिए। निर्देशों म न सामान्यमूले-के अनुसार विशेष के बिना सामान्य सौंभव नहीं है।

इस कारण समयेक विशेष मे ग्रहित-सामान्य से ही विशेष का समर्थन अभिभीत रहता है।

न कि सामान्य के समर्थन के लिए दीक्षित ने तो विशेष का उपयोग माना है वह समर्थन नहीं है। सर्वाधिक समयेकी निर्देशात्तिक विशेषाभ्यस्त ( समयेक विशेष ) मे ग्रहित सामान्य से ही समर्थन देखाता है।

सामान्यताः विशेषाभ्यस्त करके अर्थमूल है और कहीं विशेषाभ्यस्त रहता है।यही विशेषता है।

प्रभुसामान्य के समर्थन की आपेक्षा का न होना और अप्रसिद्ध के समर्थन की आपेक्षा की मानना संगत नहीं है। इस प्रकार विकस्वर अर्थात्तर्फ़ दे से में से भिन्न नहीं है।

विशेषाभ्यस्त

जहाँ विशेष न रहने पर भी विशेष भिन्नता हो। चहाँ विशेषाभ्यस्त

लेकर होता है। जाति, गुण, प्रेम, और इत्य ते भेद से विशेषाभ्यस्त के

अनेक में विशेषकर की भी भिन्नता है।

कुछ नैनों का मत है कि विशेषाभ्यस्त अधिक ते प्रयोग मे विशेष

शाल्द होता है और दूसरी जगत अर्थ। सुयोगिक प्रयोजन। मे सुनत और प्रयोजन का

समयपत्र नहीं होता। दूसरी लाभ के दोषित अन्य अर्थ के लेकर सबन्धम नाला होता

है न कि विद्वेष अर्थ के लेकर -

अतः वहाँ - विशेषाभ्यस्तप्रतिसहि है। सभी विशेष शाल्द, जन्याशा

लाभ, xxxxxx सुप्रभुन विधियां अभिभाष्यक न्योखा नुस्र्यां। रङमवान्तरालालविविदीया

१७०० प्रयोनविवर्णेय। २

1- सामान्य सर्वत्र माहीने निम्नमाहिनमाहिनमाहिन। कुलवीतनद पूर्व १३२ वर्षां संस्करण
2- आश्वाकोटुम पूर्व ३२५ कल्याणसंस्करण ६६
बिशेषकर का गत उक्त धारणा से मेल नहीं हुआ। परसर विरोधी पदार्थ में सच्चाई अभेद-भाव रहता है। सम्भव नियुक्ति के साधं सम्बन्ध न होने से विरोधी के सम्भव नियुक्ति के साधं अन्य हो जाता है।

अन्यप्रकारतिरोगीकरण विरोधगतिशीतिविरोधी नियामगतिविध, सहवायतन्त्री-विशेषत्ववृत्ति।

अन्यप्रकारतिरोगीकरण विरोधगतिशीतिविरोधी नियामगतिविध, सहवायतन्त्री-विशेषत्ववृत्ति।

जब अपरिवर्तनीय पदार्थ के साधं अन्यरूप होता है तब उस संख्याकी अन्य पदार्थ के साधं अभेद होगा न कि विरोधी के साधं सामान्यमत में सुपकन्फुस का अभेद के विस्तार प्रश्न वर्ग से सुपकन्फुस का अभेद होगा। उसका उत्तर यह है कि विस्तार भाव में भी आहारची व्यक्तित्व व्यों विरोधी भाव अभेदवृत्ति नहीं है। इसके बाद 'सुपकन्फुस' में सघन हो जाता है। अभेदवृत्ति के अन्य विषय भी है।

विरोधी भाव होने पर भी आहारची व्यक्तित्व व्यों विरोधी भाव अभेदवृत्ति नहीं है। 'सुपकन्फुस' में विषयक विरोधी के साधं सम्बन्ध भीतरी का मुख होता है। विरोधी विषयक अभेद के दोनों का परसर विस्तार नहीं है। यह धर्म में दोनों विषयक सम्बन्ध है। सुपकन्फुस व यागुल विशेषता है। इसमें अनुमोद ही प्रमाण है। अथवा तंत्र विरोधी का प्रतीति होने पर परमाणु: अभेद-कल्पना में विरोधी होता है अभेद-कल्पना में ही यह अलंकार उत्पन्न है। विरोधवृत्ति में विरोधी का सम्बन्ध नहीं है, किन्तु अभेदवृत्ति का शोधक है। नितान्त विरोधी होता तो वेद उसे नहीं लेता। शब्द और शब्द दो प्रकार का विरोधी भी समान नहीं है।

विशेषता निपात है। से विरोधवृत्ति है से विरोधवृत्ति से विरोधवृत्ति का दूर्योग्यता। अथवा के दुरार प्रश्न में सुपकन्फुस का विरोधी जोधित हो रहा है। अथवा से विरोधी होता है। अथवा के दुरार में विरोधी को यथार्थ मानना चाहिए। सुपकन्फुस विरोधवृत्ति से सामान्य भाव में विरोधी होता है नीति है वह न जागने वाला भी है। यही सुपकन्फुस का अभेदवृत्ति है। यहाँ अथवा शब्द तात्त्विकमात्र है। इसमें उपयोगिता एक पदार्थ में रहने वाला विरोधी अभेदवृत्ति सम्बन्ध से दूसरे पदार्थ के साधं अन्वेष्ट हो जाता है। अथवा से के सम्बन्ध से भी दोनों पदार्थ से एक दूसरे से अभेद हो जाते हैं। सुपकन्फुस का शब्दवृत्ति इस प्रकार होता है। - सुपकन्फुस प्रबुद्ध आवेके विरोध का अन्य अतिकारों से मेल।

विरोधवृत्ति विरोधगतिकरण अतिकार है। विशेषकर रचित निम्न पद्य में -

प्रवेषित गुजरते क्लान्तिकरात्र व्यापारवालों समय समयः
हाद्दवृत्तिकरात्रि स्पृशते किंव्हें बहुत रघुवल रघुराजस्वेत। अतिकार कोळुक भं।
यहाँ अनल (जाति) और चन्द्र (मुख्य) का विरोध है। चन्द्र के अनल होने में ही चंड-मकर है। दोनों में अपलेक्षण नहीं है अनल प्रधान नहीं है किन्तु प्रधानता विरोध को है। स्मृति में अपलेक्षण होता है। यद्यपि स्मृति में विरोध का बलक है, तथापि विरोध का प्रतिस्पर्धान उत्तर नहीं होता। चन्द्र के अहारानकता या दोषों के प्रतिस्पर्धान उत्तर नहीं होता। तत्त्व चन्द्र का अर्थ ही गंगा है। यही चमकान नजक है कि विरोध। तत्त्व विशिष्ट अर्थ की प्रतिलक्षान विरोध के स्मृति में विरोध दूर्विध हो जाता है। विभावना, विरोधक और विरोधकार से आपसत: विरोध भाने के बाद विरोध निकृप्त होती है। किन्तु विरोधकार में विरोध का क्षेत्र अधिक व्यक्त है। विभावना और विरोधक तथा विरोधकार के सृजना के द्वारा विरोध का स्वरूप पदार्थ जाता है। विभावना में कारणाध्य कार्यकलाप की अपेक्षा स्वरूप है। कारण नहीं है तो कर्म भी नहीं होना चाहिए। इसी कारणानितता वातक है।
किन्तु विरोध के समान परसर चालक नहीं है। इसी प्रकार विरोधक अथवा विरोधकार से कारणाध्य सम्बन्ध बनाये जाते हैं। दोनों में विरोध कार्यकलाप के भावावले से सम्बन्धित है और विभावना में कार्यसाधन सम और विरोधक अथवा विरोधकार के सम्बन्ध में प्रविधिवास विश्वसनीय विवेक।
विरोधकार में दोनों हो वस्तुओं में विरोध है। परसर एक दूसरे कोविधित करते हैं। समान स्थान से दोनों सबत है। जब दोनों चमककारन्न है।

**व्याससहूत अर्थ अप्लुत्तरसहूत**

**व्याससहूत में स्वतृत्व की जाति है उसी की निधा संख्य है जब कि अप्लुत्तरसहूत में है प्रसभुत और अप्लुत्तरसहूत का वैशिष्ट्यधर्म पदार्थ जाता है। दोषी ने भी स्य स्या में अप्लुत्तरसहूत मानी है। विशिष्टक से दशी के अहारानक अभ्यास्थित अथवा कर्म का अवधिन करने के लिए दशी के मत की उस प्रकार है।**

अप्लुत्तरसहूत स्वदेश के तना स्वतृत्व या स्वतृत्व:

सुक्तेन स्वदेश हरिया विश्वपाठसरोवर:

अधिकत्वसुत्तमस्तमस्तमसुद्धिक:

स्यायमुत्तमत्वमुग्नतत् प्रसभ्ये

राजसुतन्त्रस्वमन्निर्णयमन्निविन ॥ काल्यादिः 23/40

यह उत्ति राज्य के त्रिन दुष्ट मग्नी की है। यह हम गुरुवृत्ति प्रसभ्य है जो तहे प्रसभ्य का जीवन होने है। इसमें प्रसभ्य और अप्लुत्तरसहूत दोनों में भिन्न-भिन्न है। किन्तु दोनों के अनुसार यही स्वतृत्व से निधा हो रही है। यही व्याससहूत
विशेषज्ञ के अनुसार इस पृष्ठ के बारे में है कि दोषका का सम्बन्ध निम्न पृष्ठियों में दृष्टव्य है -

यदि - अभित्रका अयान अनुप्रयोग प्रस्तुति प्रतिपादित न तु प्रकृताप्रस्तुतिप्रतिपादित -

विशेषज्ञ नियमः । गत सुधा निर्भूष्ठ विनियमित। विनित अथवा प्रस्तुति प्रतिपादित निंदा नियात प्रस्तुति निंदा प्रतिपादित प्रयासी ज्ञात व्यतीत स्वतः शुद्ध स्वतः व्यासित स्वरूपः समानः । अतः अनुप्रयोग - उपभोग व्या न शुद्धिः स्वरूपः

कृतिः नयन - पृ ९३ वग्न एक हरण, म्हेजैं जु कृतिः का छोड़ कर काढ़िया का छोड़ा कर उत्तरदारण में अभित्रका ही निदान का वाचित। अभित्रका से प्रस्तुति भाव अभित्रका का विषय है। नुक्सान अभित्रका है जिससे आलोचनात्मक स्वरूप होता है यह प्रस्तुति अव ।

श्रेष्ठ है अभित्रका से प्रस्तुति का अन्य स्वरूप स्वरूप शुद्धिः के भाव में चमकार नहीं है। अभित्रका से प्रस्तुति की प्रतिपादित में ही लापतया है। अभित्रका प्रशासन के अभित्रका और प्रस्तुति की स्वतिः या निदान के स्था में अथ अभित्रका या निदान या स्वतिः को अभित्रका और अभित्रका मानने से अभित्रका प्रशासन की मत्यता कटाई में पड़ जायगी। और साथ ही अभित्रका प्रशासन के भाव में क्रमशः अथ अधर में हुई जायगी। दोषका ने प्रशासन का कचा स्वतिः मानकर ही अनुप्रयोग बाद में व्यासित माना है जब कि अभित्रका प्रशासन के प्रशासन का अर्थ वर्णना है न कि स्वतिः

अतः वर्णित न स्वतिः। कालप्रकाश तंकेट टिका - पृ २४० अभित्रका में उत्तर की जा चुका है कि व्यासित में एक की निदान का पर्यवसन उसी के स्वतिः में होता है। अभित्रका की विशेषता अथवा अभित्रका में ले जाना संगत नहीं है दोनों के क्षेत्र में प्रौढ़ में भी हैं।

राहुलकांड यात्रिक निविवेकारण गार्डनों राहुलकांड विशेषज्ञ कि कत्युन मुख्यितवाला। बैठोत्कारणेति च अभित्रका प्रशासन प्रदेश धारणप्रकृतिभूतिनिमित्त- केवल प्रभावार्था । (अर्कानकोट सूत ३२९)

सहित्यः

सहित्यं सह का अर्थ साहित्य है। किसी के साथ सह का सम्बन्ध देख

एक का सम्बन्ध पर भावित रहता है। सह के सनीत्य में विशेषज्ञ दो

धर्मों के स्वतिः का बोध एक घर्म रहता है। कितना साहित्य के अनुसार

१- वैदिक स्वामी वेदाभ्यास वेदाभ्यास लेके वेदाभ्यास सूत ३२९

२- सह समित्याङ्गात्सहोदिरसंग्रहिन्ते धर्मार अर्कानकोट सूत ३३०
विनोकित में रक के बिना दूसरा सापू या असापू वर्णित रहता है। अर्थात भाष्यकार का मत है कि विनोकित में नित्यसमयों का असाम्य क्या होता है?

नियतवर्धनसाधनचरण विनोकित: - विरोधी यू. 106, अ. 0 यू. 232

यहाँ किल्प वस्तुओं के साथ शीत का निर्मातालाल होती पर भी संबंध न होते का वर्ण है। इसके खण्ड में विशेषकर ने नवीनतर प्रकृति बन्द किया है। वे कहते हैं कि शीतवाताकार के वास्तव में उक्त में प्रकारतर से शीतवात एक ध्यान्योग निवासिक वास्तव के संस्कार के लिए कमजोर, मनोन्नत व व्यावहार आदि की शीतजाता का उपयोग नहीं हो रहा है तथापि इस वस्तुओं में नैसर्गिक शीतजाता का वास्तव नहीं माना जा सकता। यह दृष्टि बात है कि किसी कारण से शीत का सशक्ताकार न हो। व्यावहार का सपा शीतल होता है - इस नियम से चतुर के स्थान में शीत कांड नियम असिद्ध नहीं किन्तु शीत की है। यहाँ अविद्यामान प्राप्ति साधन व ग्राह्य है। अतः अनुरोधमानकार - से नैसर्गिक का त्याग माना है। 332

1. अन्य शीतवाताकार भाष्यचित्तिया शीतवातिनामांकनमुक्तः। अर्थात की तुम पू. 332
ऍमाध और दण्डी आदि के गन्धों में कव्यिराग का उलेश नहीं मिलता। अतः कुछ लोग से अलौकिक मानने में सौंपें करते हैं। इनका अभिप्राय यह है कि इस अलौकिक में कविप्रतिमान्य चमकाकर नहीं है। कविकर्मणि से रक्षक चरोछ है। लेहादिके मिश्रण का भी विशेषतावशिष्य यद्यपि समाचार नहीं है, क्योंकि यह चमकाकर लोधीका के कारण है। अतः कव्यिराग निरंतरत्व सा प्राप्तारण हो गई है, अलूकिक नहीं।

विशेषवर ने उत्कृष्ठता का उलेश कर कव्यिराग को अलौकिकता का प्रकट समारूह किया है। उनका अभिप्राय यह है कि लोकसिध वस्तु भी कविप्रतिमान्य होने से ही चमकाकर जनक होती है। कव्यिराग का कविकर्मणि केवल लोकसिध ही न थी किन्तु कविप्रतिमान्य भी है। इसमें लोकिक परम्परा में अपेक्षित है। इसके विना उपमा भी सिच्च नहीं होती है। उपमा में लोकसिध सादृश्य ही ज्यादा है। सादृश्य वहत्तक बने होने से लोकिक परम्परा के विना उपमा ही नहीं होती है। क्योंकि इसमें कविप्रतिमा नहीं है। अतः दोनों होने चाहिए। गृहालीय गव्य: में भी वस्तु: दोनों के साधारण परम्परा भी भिन्न-भिन्न है। इनमें दोनों के भेद: अभेद: अध्यक्षायुक्त है। दृढ़: कहनें: से सादृश्य का वेद नहीं होता। दृढ़: और सादृश्य का अभेद ही सातिक्य करके है दोनों के अभेद: को ही अलौकिकता है न कि केवल सादृश्य की। अतः केवल सादृश्य कहने से देश का परिहार नहीं होता। केवल कलिकपितपथ से अलूकिक विभिन्नता जनक नहीं होता अतं कष्टगत परम्परा भी अलूकिक-प्रयोगक है। चमकार्जनक लोकसिध वस्तु के अलूकिक होने में कोई वापस नहीं है। यदि यहाँ किसी का वायक माना जाय तो सभी अलूकिक का उलेश हो जाएगा।

चमकार्जनक लोकिकमायात्मक योग: वायकामार्गवाचलविकाररूपोत्कार: अभेद - अभेद को द्वारा परिकर में परिकर रूपक का अन्तःमाय

विशेषवर ने परिकर रूपक को परिकर में अन्तःमाय करने के लिए अनेक तरीके हैं। परिकर रूपक में विशेष का प्रयोग साम्प्रदाय देता है। -

साम्प्रदायिक विशेष योजना भवनत परिकर रूपक:।

नर की हृदय महकल वितर्कितत्परमण होता।

छ कस्त भवन्ति लाभ पुनः भवन्त्रयुः।

गणीत तीनों भवन्तों का प्रतिकार करती है। अतः विशेष रूपक का साम्प्रदायिक प्रयोग है। किन्तु इसका अन्तःमाय परिकर में ही हो जाता है। यहाँ गणी।
को विशेषता तीनों मार्गों में जाना है अर्थात् गंगा का विशेषणरीत्वित यथा विशेषण है। परिक्रम में भी सामाजिक- विशेषण्यों का प्रयोग होता है उसके पद्धति में गंगा का कार्य है तीनों मुख्यों में जाना। तीनों मार्गों में जाने का अर्थ विशेषण है और यहाँ इसी की विशेष है।

तत्सि विशेषणोत्सन्नत्यगतिवादिनाशयस्य प्रकृतिस्थापिकारकवादः - अ। को। पु।
उत्त। विशेषण पद सामाजिक विशेषण है इसका प्रकार -
चतुर्भुज पुरुषांनां वहाँ - देवविवेक। कुकलाकान्त दु:।
में चतुर्भुज पद वेय का विशेषण है। इसमें चारों पुरुषार्थों के दान का भाव निलिपित है। यदि कहा जाय कि निम्न पद्धति में -
प्रकृति ते गणान्तः लिखितः है यहाँ।
दृष्ट:वनावहुः स्थानात्वः में अः ते गणाः।
प्रकृति का विशेषकृत्य प्रकृति में उपयोगी नहीं है, क्योंकि अन्य के उदाहरण को योगकृत्य के आधार पर परिक्रम में अन्तर्गृहित हुए है। यहाँ प्रकृति, हैदयापिक, और अश्वस न सहायता, सहकारहृद्य और सहभन्द्रता की प्रतीति हो रही है। अतः परिक्रम में अन्तर्गृहित नहीं माना जाता तो यहाँ सहभन्द्रता पदों का अभाव होने से परिवर्तन भी कैसे माना जा सकता है। और यदि प्रकृति निहाति पदों का ताल्य सहभन्द्रता में माना तो निहात है इस प्रकार की प्रतीति विशेषण के सामाजिक ही सम्भव है, क्योंकि प्रकृति विशेषणाः से ही सहभन्द्रता आदि का अलेक्ट किया जाता है। अर्थात् वे अर्थ-तथ्य नहीं कठुप प्रमुख है वहाँ अति सहभन्द्रता प्रकृति कारक होता है निम्नमात्र है कि प्रकृति आदि पद में प्रकृति से सहभन्द्रता सहभन्द्रता प्रकृति कारक है प्रकृति आदि पद स्त्र है जिनका सहभन्द्रता ही यहाँ विशेषत है। अतः विशेषण के भी सामाजिक मानने में कोई क्षति नहीं है। विशेषता यह है कि कहीं विशेषण सामाजिक ही प्रकृति कारक होता है और कहीं आलक्ष करके प्रकृति में उपकारक होता है। इस प्रकार परिक्रम में विशेषण पद संरचना से अंतरित विश्वास का वैष्ण क्षैर है। विशेषता ने अपने छोटे मारे उसमति के तत् कु क्रम गणना विशेषण और विशेष दोनों के सामाजिक में परिवर्तन हो जाता है।

कृपया विशेषण सामाजिक प्रकृति कारक के कुकल: प्रकृति कारकार्यणतराधिकारियों क्षेत्रविशेषणां वन्न सूत्योद्ध्विविशेषणगतम क्षेत्रविशेषणामात्र सूत्योद्ध्विविशेषणां वन्न परिक्रम रवींद्य तस्मात विशेषणस्युस्माते: पक्ष हत्यते भूपस:। अतिकारकोकुम पु। 357
वायुक्ति में युक्ति का अन्तर्भाव

किसी विनिमय की श्रेष्ठता से निर्देशित वस्तु अप्रकाश होती है। वायुक्ति में इसी का गोष्ट अध्यात्म रहता है।

वायुक्ति विनिमयविशेष अनुमान हुए निर्मित सांस्कृतिकता। अलंकारकौशल पूरा 357
अध्याय-विनिमय ने युक्ति के भिन्न अलंकार माना है। इसका लक्षण यों है -

युक्ति परिवर्तन प्रेमिया मर्यादा। कुलकाल पूरा 160
विनिमय के वायुक्ति से युक्ति का मैद भी कल्याण है। वायुक्ति में किसी अन्य हेतु को विनिमय को अतिथि नहीं लेता है। जबकि युक्ति में किसी दूरावर्त विनिमय नहीं है। यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रकार के विनिमय में भिन्न भिन्न अलंकारों की क्षमता की जाती है तथा उससे अलंकारों के प्रवाह को रास्ता किया हो जायगा। इति: विनिमय के दूरावर्त विनिमय-भिन्न निर्वा वायुक्ति में ही करना उचित है।

उत्तरलेखक का काल्पिक और अनुमान से मैद

उत्तरलेखक में प्रसन्नता की सुनते ही प्रश्नोत्तरण होता है। उत्तरलेखक और काल्पिक रोंगों में प्रसन्नता के प्रति उत्तर हेतु है। धौनों में रूप से दूसरे का उल्लेख होता है। पर धौनों में अल्सर भी है। उत्तरलेखक में उत्तर प्रसन्नता की होती है। इसमें केवल उत्तर का उल्लेख कारणत्व में ही जाना है। इसके विनय उत्तर का उल्लेख कारणत्व में ही जाना है। विनय में प्रभाव असामान्यता से निर्माण साधन इंग्लिशक से अप्रभावित अनुमान की कहने के लिए वायु या पदार्थ में उपाधिक (निशाचक) है। हेतु हेतु है। जबकि उत्तर और अनुमान में अभाव हेतु है।

प्रभाव असामान्यता निर्माण विशेष विनिमयविशेष अनुमान न हो। अत्यन्त कौशल पूरा 362
अनुमान के से उत्तरलेखक का मैद भी दृष्टि है। साधारण के सामान्यिकरण या स्थानिकित्व में अनुमान होता है। महान के धौन के देखर वर्त भी सांस्कृतिक अनुमान होता है। वर्त भी वायु का अनुमान नहीं होता। वर्त भे तथा वायु का अनुमान होता है। हेतु उत्तरलेखक के निम्न उदाहरण में -

अन्येश्वर परिक्ष पुस्तक व्याख्यापुस्तक (कुटुंबिकु) पुस्तक वायुक्ति चर्चा।
अबाके व्याख्यापुस्तक वर्तभेष धमाने नामकता। गाथा 7/1/29 गाथा
उत्तर (साधन) व्यापनिषद है और प्रसन (साधन) पदार्थलिखि। इनका विभिन्नकरण है। इस प्रकार अनुमानलंकार और उत्तरलंकार में साधारणकरण के साधारणकरण और वैयक्तिकरण के अध्यात्म पर भेद बनता है। उत्तर में साधारणकरण के साधारणकरण की सीध करने में दूसरे प्रसन से अर्थगत अर्थ निकलेगा और प्रसनलंकार में कुछ काल विलम्ब होने से उत्तरस्तुति में व्यविचार का वार्षिका भी है। अनुमानलंकार में साधारणकरण का गाथ्यविनायक होता है।

अनुमान तद्भव यसाधारणस्तुतिः। अो को यु 363

यही उत्तरलंकार से अनुमान का भेदक भी है। क्योंकि उत्तरलंकार में इस प्रकार का व्याख्या नहीं पाई जाती।

अर्थगति

समझने (कार्यप्रकाश) कार्य और हेतु के विभिन्नकरण के साधन कार्यकरण की युगलःसुत्तित में मई अर्थगति अर्थलंकार माना है, हिन्दु विवेशकर ने असाधारणकरण के बुद्धी वेद (अ0 को यु 279) में कार्यकरण के कुल श्रेणी की चर्चा की है। इस तार यहाँ उसकी आवश्यकता नहीं की गई। कारण के लिंग कार्योपसत्तित नहीं होती और कार्यनकारण तो ही कारणत्ति है। कार्य श्रेणि कारणवत्ति का सम्बन्ध अर्थकरण का अर्थ है। पदार्थकारण श्रेणि के अनुमान भी कारण से कार्य अर्थवत्ति नहीं है। अर्थगतिः में कार्य और कारण के बीच संगति मध्ये के लिंग विवेशकर ने (अ0 को यु 366) एक साधारण विधि है। इससे कार्य हेतुविभिन्नकरण है वही कार्यसाधारण करणकरण वहे कारणस्तुति के अर्थों से कार्य-कारण का असाधारणकरण दुर्दृष्टि होता है। विवेशकन्त में अर्थकारण और विवेशकरण में गृहीतक के शिशु में चमकता है। जबकि अर्थगति में कार्यकरण का वैयक्तिकरण है। और कार्य के साधारणकरण वहे कारणास्तुति का अर्थों किया जाता है।

अध्ययनकरण ने अर्थगति भ्रेते दो देव पाये है।

अन्यत्र कार्यगृहस्त तत्तात्विक कृतिक्ष्य स।
अन्यत्रक्रुद्द प्रायोलथ्य तत्त्विक्यकृतिक्ष्य।
अपराजात्र बसुन्य विजीयि द्वयोऽथ तथा कृत।।
गृहीष्ठारंगृतोऽसैं गृहीष्ठमें पूराणकरितु॥ कृत्यस्मान् पूरोऽतृत: 103
दीक्षित समाप्त दोनों भेद विचारणी डूंगरी है। प्रहर्ष भूतल को परिजातरहित करने की डरा कारण है जो सुयोग में है और अपरिजातव्यूह कार्य का वर्णन स्वर्ग में है। इस प्रकार यहाँ कार्य-हेतुकल्पकरण है। अतः असीमत का प्रथम भेद अलग नहीं है। इसी भेद के दूसरे उदाहरण में -

लक्ष्मण धीरजतपालकासिनी, मुधा भवन्यभिनवा मुखनेरवीर।
नेनुसु कृष्णमोहस्य पतन्वती, चेलेन्दुसिद्ध तिलक करपलवे पुरुषोकौर।
उदाहरण में भी यहाँ असीत है। यहाँ कृष्ण और हाय में मुख्य-मुख्यरूपवाच है। हाय और कृष्ण का अभिकरण होने से यहाँ वित्ते, दान सम्मत असीत हो बदल होती है। विद्वान असीत के दो उदाहरणों में विभाजन है। इन भेद में पहला उदाहरण गौरोदबार आदि है और दूसरा भिन्न है।

 मोह जगन्नथपुराणनेतुमेन्दवाक्य समासिलसर्वेद्विभाषम्।

निश्चिन्तारसारभिधानानुश्रवन मोहः प्रवर्मकाय सुधविलासानै। कुलज्ञानन्द पुरो

gौरोदबार में कवियों गौरभेदन और दूसरे उदाहरण में मोहबुधि

वदना चाहता है। गौरोदबार और मोहबुधि की प्रकृति हेतु है जिसका यहाँ वर्णन

नहीं किया गया है। इस प्रकार की प्रकृति के समान में भी गौरोदबार और मोहबुधि भी है। अतः असीत के दो भेद जो दीक्षित को अभिमत ते वे सिद्ध

नहीं होते।

समाधि में प्रहर्षण का अन्तमाय -

समाधि अत्मकार में विरोधित कार्य की विचित्र के अनुजूल रूप हेतु होता है। तदुपरितं हेतु से कार्य सुकर होता है। विलुप्तरूपवाच ने (अषो कौं मृत्यु 269) समाधि के तीन भेद के विश्लेष है। जिन में प्रथम और

तृतीय नवीन हैं। पद्धति में अप्रकृत कार्य के सम्बन्ध होने पर कार्य सुकर होता है।

दूसरे में अनुजूल कार्य के आरम्भ होने से पूर्व ही अन्य वातावरण हेतु से कार्य लिंग होता है। तीसरे में अपकार के आधार पर अन्य प्राधिक प्रेरणा में ही प्रस्तुत लिंग हो जाता है।

गार्थं जगन्नथाय ने प्रहर्षण को एक हिन्न अत्मकार माना है। प्रहर्षण में विविधतार्थ प्राङ्त के उद्देश्य से सत्ताव्यत के विना भी ईंधन ताम होता है।
प्रहरण की उत्तरार्थिता विचारण्य है। इसकी चार समाधि में हो पाई जाती है। समाधि में हैप्सत्व कार्य की सिद्धि अभिभूत है। कार्यशिष्य मनुष्य क्विश्री उद्देश्य को लेकर प्रक्रिया होता है। अविचित अर्थ की सिद्धि में प्रयोग कराता है। कार्यशिष्य का जो क्रेक्र क्रेकर है वही रचना को भी प्रर्त करता है। लड़ता है। पहले ठेठ का जो कार्य है वही दूसरे का भी है। प्रहरण में किसी ठेठ के बिना हमत्तप सब्र नहीं है। यदयि इसमें सकार हैत मर्ँ नहीं रहता। यथा जै अलीकर नहीं किया जा सकता। स श्रृष्टि प्रहरण स्वस्य समाधि से धीन नहीं है। प्रहरण के तीन भेद माने गये हैं।

अक्सर नीलामितकार्य ताम, तिसरूपुरी यतने तत्वेरवन ततो अवधिक। रसगंगाप्य पूरो वस्तुतो ताम, उद्याचरण्य फलोवेच। रसगंगाप्य पूरो इन भेदों के निम मुखिनों में उद्धरणों में विचारवस्ती समाधि के तीनों भेद चट्टित होते हैं। जैसे -प्रहरण के प्रथम भेद का उद्देश्य लीला। तिरंगों रूप वस्तुरविविलयविविलय शृव्वतिः परामुखः।

केसू मुखिनों सावित्र श्री लक्ष्मीक्षा क्षेत्रविविलय विदर्शन शस्त्रु।

यहाँ नाशक नाशिका का मान्यता चढ़ता है। नाशिका के रूप से वह आशिगत नहीं करता सका। आलिखत मुखीकर है, श्रेष्ठ है नाशक को मुखिन सम्बन्ध भय से नाशिक। आलिखत कर सकता है। यह मुखिन अक्षय नाशक न्याय से उपस्थित हुआ है। आलिखतविविलय न्याय मान्यता कार्यस्थिति भय से ही रहे है जो दूसरा हैत है। प्रहरण के दूसरे भेद के उद्देश्य में -

- नैसर्गिक सम्बन्ध नाशकरूपितोऽक्षरोऽत्युपपंगत ज्रुतेष्ठात् सरस्वती-सरस्वती कुर्षवं।
- नाशस्त्रविविलय क्षेत्रमान्यिकताक्षम्य सद्दं श्रीः जनविविलयविविलय वत्ति तथा पाश्चिमान्यायत ।
- अक्षरक्रमात्मक प्रहरण के आनुसार उत्तर के अनुसार सम्पूर्ण समय का मानधारण का उद्देश्य मानन्वारण था।

यहाँ मानन्वारण से भ्रामण अन्य प्रति ( उरेज कर स्वर्ण भावना ) की उपस्थिति नहीं है। किन्तु विषवेश्वर की धाराणा है कि उस समय भी मानन्वारण हैतु का प्रायः (कुचिवे के सन्तो) उत्तर के आवक्ष है। अतः

य-नु भवनवेशनसमयेकामुक्तमानन्वारणप्रायेकमादृत्येस्यन तद्वति
मेरी दृष्टि से उक्त पद्य में विशेषज्ञ के दामोदर के विशेषज्ञ के तीसरे छ बेद का लक्ष्य घटित होता है। यहाँ नायक की नायिका का माननीयता अविभाज्य था, किन्तु नायिका के आवश्यक से नायक का अविभाज्य प्रमुखता में सिंच हुआ है। प्रर्शन के तुल्य उक्त बेद के उदाहरण में -

तद्दीरिणाय विशेषार्थ सत्तियय सत्तियय गतेन।
तत्तैष ललिताक्षरः दास्यविश्वार्थशः प्रवत्ता॥

समाधि के तीसरे बेद का स्वस्त घटित होता है जो विशेषज्ञ के भाषण में-
उपलब्धिपरम्परा नायिकार्थिन्यस्मयं विनिर्मितेऽविभाज्यप्रयज्ञम्।
तद्विभिन्ननायिका
रविपद्य हैलीमात्रीविभाज्यविविधानम्।
तत् योगायतं विपद्योऽविभाज्यविविधानम्।
गौ कृष्णपुराण सोहवस तत्त्वाय विविधानम्।
गौ कृष्णपुराण
विभाष में असत्य, विचित्र और विधान का अंतर्भाग

विशेषज्ञ ने शेरों में ही विभाष की भव्य की है। जब दो असत्यावलैलिक
पदार्थों में परस्पर सम्बन्ध न बनता है तब जो एक प्रकार का विभाष है। इसी की
संकोच से शक्ति बढ़ती है। इसी प्रकार विभाष शुभ हो गयी है। इन दोनों में
नैवेद्य है।

अथष्टसप्ति ने असत्य, विचित्र और विधान को भिन्न अर्थ करके माना
है। असत्य का लक्ष्य इस प्रकार है -

अर्षवृच्छिन्ते देवधर्म तृतीयमात्रवर्णणम्।
को बेद गोपसिंहुः प्रातिस्तम्भतेति।
कुब्जलक्षण धृत
अर्थवृत की अर्थकार्य संति है। गोपसिंहु के लिए पर विपद्य को उदाहरण
दुर्भ कार्य है। इसमें दो रूप का प्रकार का सम्बन्ध ठीक नहीं बैठा पाता। अतः यहाँ
विभाष होता है। प्रेम को असत्यावलि विपद्य मानकर सम्बन्ध का समाधान हो जाता है।
निम्न में विभाष के संकोच को अर्थ है। शिविरतार जमाती विचित्रकारथ यो है -

अष्टसप्ति भिन्न भाषायि विविधानमेविविधानविभाज्यविविधानसः।
रमोऽसमाधान निन्ते शिविरतार।
समाधान उदाहरण निन्ते शिविरतार -

बन्योमुनिकृता अधु नायकप्रसादस्य अर्थकारणा -
नायकप्रसाद संसारनित्यमात्रस्य भवति।
तद्विभिन्ननायिका परामाणुकाम्।
सत्य प्रामाण्याकमेह भवानितानानो नरायणाः।
रसरसायण पुराण
विचित्रकार की मान्यता का अंकन इस उदाहरण के साथ हो जाता है।
यहाँ संसार से मुक्त कर्म है। यही होता है। कर्मण्यः, यशश्चाविन्नता और
tोहित्यान कर्मयः। दोनों विकार है अर्पण कर्म और कर्मया का सम्बन्ध
नहीं बनता। कारण गुण कार्य को उपसना करते हैं (वैक्र वृत्त 111/24)
यह से पुष्प मिलता है। जब तक पुष्प रहेगा तभी तक धीरे में रहना होगा।
पुष्पकार से पुनर्मस्त्रय अवस्था होता है। अतः यह आदि से मुक्त नहीं मिलेगी।
यह आदि कर्मकाल में आते हैं जब कि उस्मुक्ति विनन्य बारे से प्राप्त होती है।
अतः दोनों के गुण श्रद्धा-श्रद्धा होने से उनका संबंध नहीं बनता। इस प्रकार विख्या-
तकार के उदाहरण में विभाषकार दी होती होता है।

विभाषन विभादन (रसगुप्तार पृ0) में अनुभव अर्थ के विरुच्छ अर्थ
का लाभ होता है। इसके प्रथम भेद का उदाहरण निम्न लिखित है।

tतद्व व्यापृतिमण्यत्या मनं निवृत्ते ववा

चन्द्रदुर्दिश्यिगुप्तिवर्गिता स्वीयतः यक्षायायं पश्वाखु

इती कीर्तनेषु मनोरथ्यम्यं पंथमछवाकरायु

लतात् सूप्रविष्टस्वारणकारकः फलिग्रामणः।

पृष्टित्राजः ने इसे विभाष से भिन्न बताया है। किन्तु वित्थमेः के द्वितीय भेद
में विभाषन का उत्तल उदाहरण घटित हो जाता है। जहाँ इद्वार की अप्रत्येक के साथ
ही भविष्य का लाभ बर, यहाँ विभाषन का दूसरा भेद होता है। अनुभवः प्रारंभिक कारणान्तर
से भी ही सकती है न केवल उसी कह्ने से। यहाँ तीता प्रेज़ो से निकलना चाहिए।

है निकास कारण इस्क्य है। मेल्कालमः के लिए इसका प्रयुक्त (वक्षायायं पत्रार्थः)
भी है। तैत्ती की इसकाय एह नहीं है जिसके अने से उसका अनिश्च्य हो।
चत्त लाभ में उद्भव धुंक वायर निक्लेन की इस्का मन में कर ही रहा था इतने
में सह वेज़े में पुस्त अभि। तैत्ती की इद्वार का अभिप्न रहा ही किन्तु याद ही
tहेडस्चत्त आनि की उसे परता। अतः एक और इद्वार और दूसरी और अनिश्च्य
लाभ होने से यहाँ विभाष ही है। तैत्ती वित्थमेः में नम्न की तरह विच्छेद करो
भी दो रम अनिश्च्य है। कही कार्य के गुण से कारण के गुण का विरोध होता है
और कही कार्य की छिद्रा से कारण की छिद्रा भी विरुच्छ होती है।

अधिकार्कार में अल्पार्तकार का अन्तर्गाम

अधिक अल्पकार में अर्शय की अपेक्षा न्यून परिमाण के आधार की भी
महत्ता वर्षित रहती है। आधार के अपेक्षा अल्प अर्शय का यथन भी बढ़ा-बढ़ा कर
दिया जाता है -

आधारस्थितियाँ अधिकृतक वापरातः
यदि कथित- मह-स्व- तत्कालयन्त्रिकमीकरणः

अत्ते-कौन्तुम पूर्ण 379

भवन पद्मः अधिक अत्ते

दूर्पूर्वक कुष्ठिकांस्थ भाषते पतञसम्पत्र भ्रवितः
लूण्स्यैः घाताराज्यकोत्तरात्यन्त्रिकाः
समस्थानन्तः नमः किर्तिवर्य स्योत्क्रिये
'तृतीयो उपारण्डतु सृष्टिमित्य यथास्वार्थं नातते गतयुक्तः

एव सर्वसूचीं

यद्वह आयाम की विपुलता में भी आहिरुः की परिपूर्णता वर्णित है। यद्यपि चाहुःचाहिं तु हो। जयरथ ने (विंशितं पूर्ण 170) ने इस उदाहरण को अर्थात माना है, क्रिया वस्तु के स्वभाव-गत्व वर्तमान में विशेषता नहीं है। इनका उल्लघ्न

वर्तमान काल्रचिक नहीं किंतु कालवर्षित होना चाहिए। जगनाथ ने यही त्यक्त देखा (1000008740 379)

विशेष ने इन आयामों का एक्षण और स्वर्ण

का समर्थन किया है। यहाँ कवि ने ही आयामस्थितियों से आयाम की परिभाषा की कालवर्षित किया है। एवं यहाँ विशेषता का पूर्ण है।

अतः अधिकृतक वापरातः

अधिकृतक का कालवर्षित भवन पद्मः

अत्ते तृतीयां सुभासित मह-स्व- तत्कालयन्त्रिकमीकरणः

अधिकृतक तेजस्वी तेजस्वी

कालवर्षित भवन पद्मः

अधिकृतक का कालवर्षित भवन पद्मः

उपेशने से प्रत्यय्यक की भिन्नता

यद्यपि जगनाथ (रसगगार पूर्ण 666) ने प्रत्यय्यक की एक भिन्न अत्ते माना है तथापि वे अत्ते में इसे हृदरूपने का अवात्त भेद मानने के पश्चात् में है। किंतु हृदरूपने और प्रत्यय्यक के उत्तरणों से इन दोनों के क्षेत्र

अतः अत्ते- अत्ते में विशेष ते प्रत्यय्यक का एक उदाहरण देखिये।
यदि व्यायामक जिनके पुरात्त दाहे
भालेि के निवशता पुरसूदननवः
तथा त्वरतत्तेव वत्सव समरेण
प्राप्य रेमलकृस्तिकृतृ तृतीय ग्रहः किम् 
वंदेि कोिनुम पृ० ३८०
इस पद्यें में श्रीवे के द्वितीय नेत्राग्नि से काम का दाह विषित है। अपने नवपत अनुस्न का उपकार करने में ती कामदेव अपने को असमय पा रहा है।
किम् अभि के समक्षी पृष्ठ का अपकार कर इसे अत्त्राम में उड़ने से रक्ष रखा है। अनात्मक प्राप्ती रोमावते के सम केकिङ है। यहीं अभि को परामित राखने में असामयक्रम हुआ वेदनेश्वर का निषिद्ध है। हेतुत्रोषा के निम्न उद्देश्य में -

सम्मान ना देिनेवेदनिकया भंकं भ्रूवार्यः श्री स्गविशेषविभूति।
धुनें सतामवश्यापदः सा भ्रुवास्वीस्तदमभविभूति। आ ० कौि ० पृ० १८२
यहाँ दत्तके के समय का आस्मानिय ध्रुवत है। निसका कारण अद्वैत विशेष है।

छत के साध् अद्वैतविने का उत्तरक्तसिंि सदेश है। इसमें हेतु का सम्मान मात्र है, निर्त्य नहीं। उद्रोषा का तात्पर्य उद्वेष उद्वृत्त है इसमें हेतु वृहत्त भूमि पर आभूत न रह कर कालन जगत में रहता है। नात्मक और तत्त्वात्मका में से किसी भी हेतु निर्त्य का बेद नहीं होता। इस हेतुत्रोषा से प्रत्ययक का विशेष्य मिलता ने कहूँ नहीं है। उद्रोषा में प्रत्ययक का विशेष्य नहीं है। झकिया। नात्मक जगन्नाथ ने, गायत्रेनुत्रोषा में सम्मान वाक्रक पदों के अभाव से हेतु का निर्त्य रहता है। किन्तु इसारे शाब्दिक और उनके अर्थ साथ से हेतु का निर्त्य नहीं होता जिससे यह देव यहाँ स्वल्पत हो सके। यही निम्न पद्य में - (उद्रोष्ट्रा का उदाहरण)

उद्रोषा यह सम्बंध नहीं है। जिनके निवास -
नात्मक अभिनव तथा तय सोद्वाधिकार:

निषेध सभी अवयवाय वर्तकान्तदित्वमि
लमि गायत्रेनुतरस्वयं तेषापिरयेः पद्मात्माः।
आ ० कौि ० पृ० ३८२
पद्मात्म श्री के द्वारा का कारण पद्म प्रेमसात्तुत्वारीक्रम के उपसेवनम भो का कारण माना उत्तरत है। यहाँ हेतु निर्त्य छोड़ जाता है, किन्तु यहाँ हेतुनिर्त्य के सामय के होने पर भी सम्बन्धतात्मक पद (मन्ये) पद के तत्त्वात्म के हेतु का निर्त्य नहीं हो रहा है। इस प्रकाः प्रत्ययक के दो प्रतिपादक व्याख्याता का जन्तु जनक भाव उदर्शित होता है। और कारण के तत्त्व से पूर्वकारण का निर्त्य रहता है जबकें उद्रोषा में कारण के अभाव से पूर्वकारण का निर्त्य नहीं होता। यही बीमा का सूहम भेद है।
सामान्य और मीलित -  

रक वस्तु समान गुण के कारण दूसरी वस्तु में पूर्णित जाता है, पर अपना स्वस्थ नहीं होता। दोनों में भ्रग दोपो हुए गुणसामय के आधार पर सामान्य अल्लकार में रक स्वतंत्र रहती है।

स्वगुणसप्ताही-गुणप्रत्येक्षय स्व गुणान्तरू कोलम पृ. 393

जैसे - सिक्तकारकप्राचय लोकाः सखकप्रेमपु च सैकनेपु।

कुन्दमुदाता अवसादानात प्रतिविधि ब्रह्मभूतेन नामः। । वृक्ष-पृ. 393

इस उदाहरण में कुसुमवैणक्ष और इस का अभेड़भान है, क्योंकि दोनों रक्ष्य है। बच्चों से इसे की पूर्ण प्रतीत नहीं है, क्योंकि उत्तर कालीन भेद खान से पूर्व खान के अभेड़ खान का वाध नहीं होता। इसके रूप में ममोंक का उद्धरण -

देवस्वरुप वनस्पति वपूर्ण गुणः प्रति गहरातृतत्वोऽति।

भूगोल सिद्धे यदि नामित्यान्तेन पेदविक्यायनादर्शनान । कोह्प्रकाशः

में भी प्रमाणक बोधन का उत्तरकालीन भेद-प्रतीति से पहले का अभेड़-भान वापित नहीं होता। इस उदाहरण की तबित कर जगनाथ ने (रसगंगाधर पृ. 0) अपित की है कि उत्तरकालीन भोध से पूर्व प्रतीति तिरंभक मात्र होती है। अतः उत्तरप्रतीति मे ही अभेड़कर है न कि पूर्व प्रतीति मे। ममोंक के प्रति किसी तरह इस आक्षेप का समाधान यह है कि समान्यालाकार में भेदप्रतीति की वर्णनीयता की उल्लेखिका नहीं है। उत्तरकालीन में भेदप्रतीति पूर्वकालीन-अभेड़प्रतीति का बाध नहीं होता। अत: उत्तरकालीन भेद-भान से पूर्वकालीन अभेड़भान तिरंभक नहीं होता। पूर्वकाल से अभेड़भान की चर्चा में जो तौर पर रहता है। यह उत्तरकाल से पूर्वकाल का अभेड़-प्रतीति का तिरंभक माना जाय तो विरोध भान और असन्तति बादश विरोधी वृक्षों का उल्लेख होना यावे है । क्योंकि इनमें अपार-अपार विरोध है, वास्तविक विरोध नहीं। इसी प्रकार विभाग और विशेषता में भी दूसरे प्रतिविधत नहीं की जाती है। अत: जगनाथ का आक्षेप तर्क संगत नहीं है।

इस विपरीत से अम्बेदकरक-सम्मान उल्लेखित और विशेषक का प्रतिविधत होता जाता है| मीलित का विरोधो उल्लेखित है और सामान्य का विरोधक विशेषक । दोनों अतिकार बिचर नहीं होते । दोनों में भेद खान वर्णनात्मक उल्लेख का आधार नहीं है। दोनों में वाक्य वस्तु से गोष्ठ वस्तु का तिरंभक
है निश्चय से व्यक्तिमेव का मान होता है। यह आर कहा ना पुका है कि तिरक्षित और अस्तिरक्षित मेदमान के प्रयोगक नहीं है।

मोहिन्त और सामान्य के भेद को लेकर आलोचकों में मतभेद चल पड़ता है। विचारक ने अनेक आलोचकों का मतों को सामने रख कर जाँच पड़ताल की है। दीधित ने मोहित का उदाहरण इस प्रकार दिया है -

रसो नाचार्य तात्कालिकता सहजात्मक। कुलधारन पूरा।

यहाँ नायिका के नैसर्गिक ललच चरण से तलाश अंक विश्लेषण है। मधुनस्य होने से महाराज की उपलब्धि लक्षित नहीं होती। यह आचार्य के व्यक्ति का मान नहीं होता। सामान्य का उदाहरण इस प्रकार है -

पद्माकर विद्याधरनी मुख्यालयिक सुध्वामू। कुलधारन पूरा।

यहाँ क्रम और मुख दोनों अत्यधिक समान है। विशेषतः का मान होता है, कितने मुख क्रम है यह मुख है - इस प्रकार मद्दत क्रम से धर्म के आधार पर मेद नहीं होता। अतः इन दोनों आलोचकों का भेद यह है कि मोहित में दो वस्तुओं के सहृदय से व्यक्तिमेव दर्शित होता है जबकि व्यक्तिमेव भास्मान होने पर भी सामान्य में व्यावस्थ धर्म का मान नहीं होता।

मोहिताचार्य की प्रकाशन सहारामन्त्र सामान्यसम्म मैंनी चित्रण। सामान्य-तक्तारा तु मद्दतमार स्वामिजी सामान्यसम्म मैंनी चित्रण। सामान्य-तक्तारा तु मद्दतमार स्वामिजी सामान्यसम्म मैंनी चित्रण। सामान्य-तक्तारा तु मद्दतमार स्वामिजी सामान्यसम्म मैंनी चित्रण।

लगेते। व्यक्ति और धर्म के आधार पर मोहित और सामान्य का उक्त मेद संगत नहीं है। व्यक्ति के आधार पर व्यक्तिमेव मानने से सामान्य मोहित है। नाता है। वह सामान्य नहीं रहता। व्यक्ति में मद्दत में भी धर्म में रहने चाहता धर्मस्वास्थ्य अन्य धर्म से परान्तन का निर्देश होता है। इस प्रकार व्यक्ति के आधार पर दोनों का मेद नहीं होता। धर्म के आधार पर भी सामान्य में व्यक्तिमेव का मान नहीं हो सकता। भास्मानों में व्यक्तिमेव व्यावस्थापन सामान्यसम्म का आधार पर जब व्यक्तिमेव धर्म की प्रतीति हो नहीं है तब व्यक्तिमेव प्रतीति भी संभव नहीं है। जैसे पद्म और मुख दोनों ललच है। इनमें रक्तच धर्म है। इनके व्यावस्थाधर्म का अवसास न होने पर सामान्य में व्यक्तिमेव की प्रतीति संभव नहीं है। अतः व्यक्ति और धर्म के आधार पर दोनों का मेद लिख नहीं होता।

व्यक्तिमेव प्रतीति रितिक्षण है। वस्तुतः मद्दतमार व्यक्ति धर्म में तत्त्वित है। जब व्यक्तिमेव निरस्त धर्म में तत्त्वित है। नाता है। मोहिताचार्य का चित्रण। सामान्यसम्म। व्यक्तिमेव प्रतीतितपादिक्षेत्र। - 30 और पूरा 396
कुछ लोगों के अनुसार मीतित में दो वस्तुओं के लक्षण को समता रहती है।
इस कारण निर्माता ने नियमित बनाने के दुरा होता है। सामान्य में दो
वस्तुओं की अवस्था प्रतीत होने पर बसे भी गुण समय से उनका में होता रहता है।
- 
बल्कि जैसे वस्तुव्यवस्थाके लक्षण समान होने पर भी उनके गुण समान में होता रहता है।
(अलकारकृत: पृ 397 उद्धरण)

दोनों का यह वैद्य समानीय नहीं है। गुणसमय से सामान्य में वस्तुप्रतीति
का अभाव रहता है। जैसे सामान्य के उद्देश्य -

गैरसामान वस्तुओं पर लागत उपर्युक्त गृहाक्षेत्र

दुर्व्य प्रशस्त चित्रकार के प्रशस्त गृहाक्षेत्र में।

गृहाक्षेत्र 7/7 छाया।

मै दुर्व्य अपने ध्वनित्व का लागत न कर समान तथा दृष्टि पुरुषित जाता है।
वह रेडालक्ष्य के प्रतीत होता है। इसमें शृंखला हुआ है। दृष्टि प्रतीति
होता है, इसी प्रकार चित्रकार के गृहाक्षेत्र में नामित के गुण की कोई नहीं पदचारण है।
यद्यपि चित्रकार और गृहाक्षेत्र में नहीं है, तदायक भेद-परित्याग उपर (दृष्टि प्रतीति)
के बारे पर कोई भेद ( रेडालक्ष्य ) अभिप्रेत है। अतः सामान्य में वस्तु-
प्रतीति समृद्ध नहीं है। इसी प्रकार मलबाद आदि सामान्य के उद्देश्य में भी
अभिप्रेत और चित्रकार में गृहाक्षेत्र गृहाक्षेत्र का अवधारण नहीं है।

दोनों की संपर्कता रहती है। यही निष्कर्षमत: वस्तुप्रतीति का अभाव है।

अतः सामान्य में वैद्यकोन नहीं है।

अतः कहा गया है कि मीतित में सामान वस्तु है निर्भर निर्भर नीति को प्रतीति
होता है। निर्भर नीति को प्रतीति नहीं होती। मीतित में बानित में ही प्रतीति होती
है। इसका क्या अभिप्रार है? मीतित में वस्तु का भाव नहीं होता या उसके ध्वनि
का भाव नहीं होता। मीतित में वस्तुमान न होने ध्वनि तीन कारण हो सकते है।

जैसे - विद्यामान, सामन्यमान और किसी प्रतिव्यवस्था का अवधारण।
किन्तु यही निर्भर पदार्थों भी है घट के समान विधि है। और विद्यामान सामन्यमान भी है।

अन्यथा सामान्यमान में भी मीतित माना जाया। मुख समा है इन्द्रियव्यवस्थाओं
न मानने पर विशेष वार विश्लेषण के सा से प्रदूष का ही मान लेता है।
अतः मीतित में विभव और सामन्यमान दोनों है। बानित मीतित में केवल प्रतिव्यवस्था भी नहीं
है। जैसे मीतित से याकवाह्य प्रतिव्यवस्था नहीं है। अतः विश्लेषण वस्तु धानव्यवहः
है। और मीतित में वस्तुव्यवस्था मानने पर इस अन्तर्का विश्लेषण
खटाई में यह जाता है क्योकि सामान्य में भी गुणस्वत्त्व से रेकाल्य अभिलेख है।
मुख में मुखिते घर्ष है। मुखिते से मुखिते टिक नहीं हैं। इसी प्रकार मौलिक है भी तुलसी
का यात्रा में रेकाल्य मानने में धार्मिक बात नहीं है। चरण की नैसर्गिक अर्थव्यवस्था और
महावर दोनों का रेकाल्य है। इस प्रकार मौलिक व में भी व्यक्ति के घर्ष का मान न
मानने गरे मौलिक की सन तो पर उज्जर जाता है।

अतः मौलिक में व्यक्ति मत और व्यक्ति के घर्ष का मान है। औपर दो
वस्तुओं के गुणस्वत्त्व के आधार पर सच्च वस्तु से निर्देश के स्वस्त्र का निरूपण नहीं
होता तथा सामान्य में व्यक्ति स्वत्त्व की प्रतीति भी नहीं होती।

विशेषता ने अपने मत से में सामान्य और मौलिक का वेद विश्वास है।
मौलिक में निरूपण के घर्ष का वेद विश्वास से होता है जबकि सामान्य में निरूपण -
व्यक्तिकर्मव्यक्त में व्याख्या होता है।

यद्यपि निरूपणकर्मव्यक्ति को वेदन स्वत्त्व है। यद्यपि तदुच्छयात्मकको वेदन स्वत्त्व मानने
योजना है। वेदन का उद्देश्य है - अपारंतरते दृष्टि मुखरक्रमण गिरो
विश्वासविश्वास गतितीव्र बातें मुख्य।
इति स्वैर्यव्यवस्त्र के गुणहदशी स्वत्त्व लोकसभा
वस्त्र न मनोदोष आवश्यक (?) सृजनात्। जौकोपुर 0319
ये तत्तत्त्व विश्वासव्यवस्त्र है। यद्यपि जो वेद्य सके व्याख्या है।
मलप्रय
आदि सामान्यव्यवस्त्र में भी-
निरूपण वाचवाचक गन्धर्मधम्यन्ति विश्वस्त्र स्व वेद्यो न तवद्व वाचवाच
चन्द्रशाहर्मधम्यन्ति।

यहाँ अवश्यक कारण स्व से व्याख्या है। यह प्रकार वाचवाचक के
आधार पर दोनों का मेल प्रतिपादित होता है।

व्याख्या

व्याख्या को स्वतंत्र व्यापक मानने में कुछ आलोचकीक गधार है। स्वकर
ने अन्तररतक का उद्योग दी हुई गुणवत्ता विश्वास है।
दृष्टि वस्त्र वस्त्र मनोरत्न जीवित दृष्टि वाला।
विश्वासव्यवस्त्र जीवनसात स्वतव वाचवाचर्म।
किन्तु अन्त में स्वयं इस पद्धति में व्यक्तियों का मानने है। 1 इस ग्रहण में परंपरागत जीवन (पूर्व संस्कृतिक वृत्ति ॥१९) को ध्वनितप्प का गौर गर्ना है। कहा जाता है युक्ति -
रूकोल्पक स्वास्थ्य मित्र अतिकरण हो दी गई है। किन्तु विश्वास ने युक्त पद्धति में ध्वनितप्प ही मान दिया है। उन्होंने व्यक्तियों से ध्वनितप्प का बैलॉन भी भेजा है। युक्त
पद्धति में व्यक्ति व्यक्तियों का उद्यम करते हैं। व्यक्तियों में पहले उपयोग और
उपयोग का अनुमोदन होता है तथा उपयोग की अवधारणा उपयोग को अनुमोदन देनेवाला रहता है। साह्योविक पुत्र धर्म के साथ यहाँ साह्य-निप्पेदित रहता है। जब दोनों का
पुत्र साह्य का शक्तिक विवेक नहीं है इसलिए व्यक्तियों नहीं है। विश्वास और वामस्थवन
में साह्य का अनुमोदन है। दूसरे पारे से भी बौट कहे हुए एवं साह्य जिनका मानना
करते हैं। अतः विश्वास का अनुमोदन है।

व्यक्ति वेतन अनुमान के अनुसार

व्यक्ति वेतन अनुमान के अनुसार

व्यक्ति वेतन अनुमान के अनुसार


td4

1. संहारी व्यक्तिको समावेशक। विश्वास पूर्व में वामस्थवन में व्यक्ति वेतन अनुमान के अनुसार

2. संहारी वेतन 408